कृषिविज्ञान पाठमाला

सत्यमेव जयते

भारतीय कृषि का विकास

लेखक
डॉ. शिवगोपाल मिश्र

भारतीय भाषाओं में ज्ञान-विज्ञान

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

भारतीय कृषि का विकास

लेखक
डॉ. शिवगोपाल मिश्र
(पूर्व निदेशक)
शीलाधर मृदा-विज्ञान संस्थान,
इलाहाबाद

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार
2002

© भारत सरकार, 2002
© Government of India, 2002

प्रकाशक :

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय,
(माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग)
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110 066

मूल्य :

देश में : रु.
विदेश में : पौंड/डॉलर

बिक्री हेतु संपर्क सूत्र :

(1) **वैज्ञानिक अधिकारी (बिक्री)**
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड 7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-10066

(2) **प्रकाशन नियंत्रक**
प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
सिविल लाईन्स
दिल्ली-110054

आयोग के अध्यक्ष

1. डॉ. दौलत सिंह कोठारी, (1961-1965)
2. डॉ. निहालकरण सेठी, (1965-1966)
3. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, (1966-1967)
4. डॉ. एस. बालसुब्रह्मण्यम्, (1967-1968)
5. डॉ. बाबूराम सक्सेना, (1968-1970)
6. श्री कृष्ण दयाल भार्गव, (1970)
7. श्री गंटि जोगि सोमयाजी, (1970-1971)
8. डॉ. पी.गोपाल शर्मा, (1971-1975)
9. प्रो. हरबंशलाल शर्मा, (1975-1980)
10. प्रो. मलिक मोहम्मद, (1983-1987)
11. प्रो. सूरजभान सिंह, (1988-1994)
12. प्रो. प्रेम स्वरूप सकलानी, (1994-1998)
13. डॉ. हरीश कुमार, (1998)
14. डॉ. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव, (1998-2001)
15. डॉ. हरीश कुमार, (2001-)

पुनरीक्षण एवं संपादन

प्रधान संपादक
डॉ. हरीश कुमार

संपादक
श्री दुर्गा प्रसाद मिश्र

पुनरीक्षक
श्री प्रेमानंद चंदोला

प्रकाशन एकक

श्री धीरेंद्र राय
सहायक निदेशक

डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल
वैज्ञानिक अधिकारी

श्री आलोक वाही
कलाकार

आमुख

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम के रूप में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विकास के लिए तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (अब मानव संसाधन मंत्रालय) के अधीन सन् 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की थी। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने अनेक शब्द-संग्रहों, परिभाषा-कोशों, चयनिकाओं, पत्रिकाओं, पाठमालाओं तथा विश्वविद्यालय स्तरीय हिंदी पुस्तकों का निर्माण एवं प्रकाशन किया है।

पाठमालाओं के निर्माण में इस बात का ध्यान रखा गया है कि उसकी विषय-सामग्री अद्यतन तथा उपयोगी हो और भाषा सरल, बोधगम्य एवं आकर्षक हो ताकि अध्यापक भी हिंदी माध्यम से अपने-अपने विषय को पढ़ाने में सक्षम हो सकें।

प्रस्तुत पाठमाला "भारतीय कृषि का विकास" इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध शीलाधर मृदा शोध संस्थान के पूर्व-निदेशक डॉ. शिवगोपाल मिश्र ने लिखी है जो कुल 5 खंडों और 18 अध्यायों में विन्यस्त है। महान वैज्ञानिक लेखक डॉ. मिश्र ने विषय का प्रस्तुतीकरण वैज्ञानिक ढंग से किया है और पुस्तक के अंत में अपेक्षित संदर्भ तथा शब्दावली सूचियाँ भी दी हैं। लेखक ने आयोग द्वारा निर्मित पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करने का पूरा प्रयास किया है। पुस्तक का पुनरीक्षण आयोग द्वारा प्रकाशित पत्रिका "विज्ञान गरिमा सिंधु" के पूर्व संपादक श्री प्रेमानंद चंदोला ने किया है। पुस्तक की उपादेयता में वृद्धि करने के लिए इसके संपादक श्री दुर्गा प्रसाद मिश्र ने इसके परिशिष्ट के रूप में आयोग के शब्दावली निर्माण के सिद्धांत, मानक देवनागरी वर्तनी तथा आयोग के प्रकाशनों की सूचियाँ भी दी हैं।

मुझे विश्वास है कि यह पाठमाला स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

अक्तूबर, 2002

(डॉ. हरीश कुमार)
अध्यक्ष

विषय-सूची

अध्याय | पृष्ठ

प्रथम खंड

प्राचीन कृषि

(700 ई.पू.–400 ई.पू.)

अध्याय–1 : प्राचीन काल में कृषि का महत्व 1

अध्याय–2 : भूमि 5

अध्याय–3 : कृषि क्रियाएँ एवं उपकरण 10

अध्याय–4 : खादें 15

अध्याय–5 : सिंचाई 18

अध्याय–6 : कृषि फसलें तथा वनस्पतियाँ 22

अध्याय–7 : जलवायु विज्ञान 27

अध्याय–8 : बुद्ध-जैन कालीन कृषि 34

अध्याय–9 : कौटिल्य कालीन कृषि 41

दिवृतीय खंड

संक्रांति कालीन कृषि

(500-1000 ई.)

अध्याय–10 : वराह मिहिर, पराशर तथा कश्यप का योगदान 53

अध्याय–11 : दक्षिण भारत में कृषि 62

तृतीय खंड

मध्यकालीन कृषि

(1000-1800 ई.)

अध्याय–12 : बंगला में कृषि साहित्य 66

अध्याय—13 : घाघ तथा भड्डरी का योगदान 88
अध्याय—14 : मुगलकालीन कृषि 106

चतुर्थ खंड
स्वतंत्रता-पूर्व कृषि
(1800-1946)

अध्याय—15 : अंग्रेज कालीन कृषि 117

पंचम खंड
आधुनिक कृषि
(1947 से अब तक)

अध्याय—16 : स्वतंत्रता परवर्ती कृषि का परिदृश्य 123

अध्याय—17 : कृषि-पत्रकारिता 128

अध्याय—18 : हिंदी में कृषि विज्ञान का अवतरण 135

परिशिष्ट

I. पृथ्वी सूक्ति में कृषि विज्ञान 173
II. बाण द्वारा 'हर्ष चरित' में (7/227–30) विंध्यादेवी के वनग्राम (जंगली देहात) का वर्णन 179
III. पारिभाषिक शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी एवं अंग्रेजी-हिंदी) 181
iv वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली - निर्माण के सिद्धांत 185
v मानक देवनागरी वर्णमाला तथा वर्तनी 191
vi आयोग के प्रकाशन 201

भूमिका

मानव विकास की कहानी अत्यंत रोचक है। पेड़ों में विचरण करने वाला मानव धीरे-धीरे पृथ्वी पर उतरा। उसने लकड़ी के औज़ार बनाए और पेड़ों से प्राप्त फल-फूल या मूल पर जीवन-यापन करने लगा। यह **पूर्वपाषाण काल** था। फिर उसने पत्थर के औज़ार बनाए और हिंसक पशुओं से अपनी रक्षा करने के साथ-साथ वह उनका शिकार भी करने लगा। उसने पत्थरों की रगड़ से अग्नि उत्पन्न की और कच्चे मांस को पका कर खाने की विधि ईज़ाद की। यह मानव-जीवन की **अहेर अवस्था** थी। धीरे-धीरे उसने पशुओं को पालतू बनाया। इस तरह पशुओं को चराने और उनकी देखभाल का कार्य प्रारंभ हुआ। वह पशुओं के लिए घास की खोज में घुमंतू बनकर अपने सीमित क्षेत्र से बाहर निकला। जब जंगल में लगी आग से क्षार हुए भूखंडों पर वर्षा की फुहार पड़ने से अच्छी घास तथा कुछ अनाज उगे दिखे तो उसने **प्रारंभिक कृषि** का मंत्र लिया। इस तरह आदि मानव कृषि की ओर अग्रसर हुआ। उसकी आवश्यकताएं बढ़ती गईं। उसने धातुओं का पता लगाया जिनसे उसने खुरपी, कुदाल जैसे प्रारंभिक कृषि यंत्र बनाए।

धातु युग के सूत्रपात के साथ ही भारत के विभिन्न भागों में सभ्यता का विकास हुआ। इसका प्रमाण हड़प्पा और मोहनजोदडो के ध्वंसावशेष हैं। 1924 में हुई इन नगरों की खुदाई से यह पता चला है कि यह भारतीय सभ्यता 3250-2750 ईसा पूर्व फूली-फली। मिस्र और मेसोपोटामिया की प्राचीन सभ्यताएँ भी इसकी समकालीन थीं। सर जॉन मार्शल ने अपनी पुस्तक — "मोहनजोदड़ो और सिंधु सभ्यता" में लिखा है कि इन "खुदाइयों से इतना तो स्पष्ट है कि आज से 5000 वर्ष से भी पूर्व इस स्थान पर ऐसा नगर था जिसके निवासी अन्य देशों की अपेक्षा न केवल अधिक उन्मुक्त थे, वरन् सर्वोत्कृष्ट सफाई के साधनों से युक्त और दैनिक जीवन की सुविधाओं से पूर्णतया सज्जित थे। यहाँ के निवासी अन्य देशों के साथ व्यापार करते थे।" यद्यपि सिंधु घाटी के इन वासियों की कृषि पद्धति के विषय में बहुत कम ज्ञात है किंतु मोहनजोदड़ो के ध्वंसावशेषों से प्राप्त गेहूँ और जौ के दानों से यह विदित होता है कि उस समय इन दोनों अन्नों की खेती की जाती थी।

गेहूँ की जिन दो किस्मों की पहचान की गई है वे आज भी पंजाब में उगाई जाती हैं। उस समय किस तरह का हल प्रचलित था, यह विवाद का विषय हो सकता है, किंतु बैलों, भैंसों, हाथी और ऊँटों के प्राप्त अस्थिपंजरों से पता चलता है कि उस काल में पशु-पालन होता था। गेहूँ, जौ तथा कपास के अतिरिक्त तरबूज तथा खजूर की खेती की जाती थी और नदियों की बाढ़ से सिंचाई की जाती थी।

सिंधु घाटी सभ्यता के बाद उत्तरी भारत के नदियों के किनारे आर्यों द्वारा बस्तियाँ बनाए जाने के प्रमाण मिलते हैं। ये **आर्य** कौन थे और कहाँ से आए, उन्होंने वेदों की रचना कब की — ये प्रश्न अभी भी ठीक से उत्तरित नहीं हो पाए। फिर भी आर्य का सीधा-सादा अर्थ 'किसान' था। वेदों में 'विश' शब्द आर्य प्रजा के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी से 'वैश्य' बना है। वैश्यों का कार्य खेती करना था।

वस्तुतः **वैदिक काल** से ही कृषि का व्यवस्थित इतिहास प्राप्त होने लगता है। वैदिक साहित्य (2500-1400 ई. पू.) का सबसे महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथ **'ऋग्वेद संहिता'** है। ऋग्वेद तथा अर्थर्ववेद दोनों में ही वृष्टि की उपादेयता, कृषि की महत्ता, पशुओं तथा कुओं के महत्व का वर्णन मिलता है।

'ऋग्वेद संहिता' से स्पष्ट हो जाता है कि आर्यों ने पशुओं की देखभाल के साथ दूध, दही और अन्य दुग्ध पदार्थों पर ध्यान दिया। उनके चरागाह भी अच्छी अवस्था में थे। 'तैत्तिरीय संहिता' में छह ऋतुओं और शस्यावर्तन का उल्लेख मिलता है। वैदिक काल के अनंतर ब्राह्मण ग्रंथों का काल (1400 ई. पू. से 500 ई. पू.) आता है। 'शतपथ ब्राह्मण' में कृषि संबंधी विस्तृत उल्लेख मिलते हैं। पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रंथ में विशद कृषि-शब्दावली प्रयुक्त की है और अष्टाध्यायी के भाष्यकार पंतजलि ने इसकी विशद विवेचना की है। इनसे तत्कालीन कृषि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

इसके बाद हमें इस काल से **महात्मा बुद्ध तथा वर्धमान महावीर** के कार्यकलापों का बोध इतिहास ग्रंथों से होता है। वस्तुतः 500 ई.पू. से लेकर चन्द्रगुप्त के मंत्री कौटिल्य द्वारा 'अर्थशास्त्र' की रचना के समय तक कृषि के निरंतर विकास का सही पता चलता है।

इसके बाद **महाकाव्यों तथा पुराणों** का काल आता है जिसमें संस्कृत,

में रचित ग्रंथों में कृषि की झाँकी मिलती है। दक्षिण भारत में भी संगर्भकाल में राष्ट्रकूटों, पल्लवों, चालुक्यों तथा चोलों ने कृषि के उन्नयन में योग दिया।

देश में राजनीति के उथल-पुथल तथा विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप सांस्कृतिक ढाँचा चरमरा गया। संस्कृत के बाद क्रमशः पाली, प्राकृत और अपभ्रंश और फिर देशी भाषाओं का उदय हुआ। उनमें जो भी कृषि विषयक साहित्य रचा गया उसका अधिकांश विनष्ट हो गया। केवल **मौखिक परंपरा** बची रही। फलतः चौदहवीं सदी के आस-पास घाघ भड्डरी तथा खानी की खेती संबंधी कहावतें जन मानस में व्याप्त रहीं और इन्हीं को आधार मानकर खेती की जाती रही।

इसके बाद **मुगल काल** में कृषि का व्यवस्थित रूप उभर कर सामने आया — विशेषकर टोडरमल ने, जो भूमि की उर्वरता ज्ञात करने तथा उसके प्रबंधन की जो नींव डाली वह उसी रूप में अंग्रेजों के आगमन तक चलती रही। अंग्रेजों के शासन काल में भारतीय कृषि ने वैज्ञानिकता का चोला धारण करना शुरू किया। देश के स्वतंत्र होने तक कृषि का सुविकसित ढाँचा तैयार हो चुका था। **स्वतंत्र भारत** में भारतीय कृषिविज्ञानियों ने जो खोजें कीं उसके बल पर देश न केवल अन्न में आत्मनिर्भर बना, अपितु कृषि विज्ञान ने भी परम उत्कर्ष पद प्राप्त किया।

इस तरह भारतीय कृषि के विकास की कहानी अत्यंत मनोरंजक है। कृषि ने जो उतार-चढ़ाव देखें हैं, उसमें जो अवरोध आते रहे हैं और फिर जिस तरह समय के साथ उसने वैज्ञानिक स्वरूप प्राप्त किया, उसका विवेचन आवश्यक है। इसी दृष्टि से अगले अध्यायों में ऐतिहासिक पक्ष पर विशेष बल दिया गया है और कृषि क्षेत्र में हुई प्रगति का लेखाजोखा प्रस्तुत किया गया है।

किंतु कृषि के विकासक्रम में इतनी विशृंखलता है कि तथ्यों को एकत्र करके उन्हें शृंखलित करने में श्रम तो लगता ही है, साथ ही इसकी भी आशंका बनी रहती है कि कहीं भ्रांतिपूर्ण निष्कर्ष न निकल जायें। फलतः वैदिक काल से वर्तमान काल तक के कृषि विषयक संदर्भों को निर्देशित कर पाना कठिन है। हमने संपूर्ण सामग्री को 8 खंडों के अंतर्गत 18 अध्यायों में सज्जित किया है। अंत में परिशिष्ट रूप में कुछ रोचक प्रसंगों को भी सम्मिलित कर दिया है। इससे यदि पाठकों के कृषि विषयक ज्ञान में कुछ भी वृद्धि हो सकी तो

लेखक अपने श्रम को सार्थक मानेगा। जिन ग्रंथों के आधार पर सारी सामग्री तैयार की गई है उनके लेखकों क प्रति आभार व्यक्त करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। **'शब्दावली आयोग'** ने मेरी इस पुस्तक को प्रकाशित करने का दायित्व लेकर मुझे कृतार्थ किया है।

किमधिकम् !

इलाहाबाद **शिवगोपाल मिश्र**

प्रथम खंड

प्राचीन कृषि

(700 ई.पू.–400 ई.पू.)

अध्याय 1

प्राचीन काल में कृषि का महत्व

ऐसा कहा जाता है कि चाक्षुष मनु के प्रपौत्र राजा वेन की दाहिनी भुजा के मथने से पृथु का जन्म हुआ। इसे वैन्य कहा गया है। पृथु ने ही कृषि का आविष्कार किया। इन्होंने पृथ्वी से नाना प्रकार के रस वनस्पतियों से निकाले तथा इनका अनुकरण ऋषियों, देवों, गंधर्वों, पर्वतों, वृक्षों और असुरों ने किया। पहाड़ी प्रदेशों को समतल बनाया गया और गाँवों, कस्बों की स्थापना की गई (विष्णु पुराण 1. 13.9, 40-43)। पृथु के ही नाम पर **पृथ्वी** का नामकरण हुआ।

'कृषि' शब्द कृष् धातु से निकला है जिसका अर्थ है कूँड बनाना या जोतना। प्रारंभ में कृषि शब्द से 'हल चलाने' का ही बोध होता था। आचार्य पतंजलि ने इस शब्द को विस्तार दिया और लिखा 'कृषि का अर्थ केवल हल चलाना ही नहीं, अपितु बैल तथा कर्मकार आदि के लिए भोजन का प्रबंध या प्रतिविधान भी करना है।''

(नानाक्रियाः कृषरर्थाः नावश्यं कृषि विलेखन एव वर्तते। किं तर्हि प्रतिविधानेऽपिवर्तते, यदसौ भक्ता बीजबलीबर्दैः प्रतिविधानं करोति स कृष्यर्थः)।

हाल कृत 'गाथा सप्तशती' में (4/24) कृषक का वर्णन इस प्रकार हुआ है –

''जो वर्षाकालीन कीचड़ में हल चलाने से रात्रि में निस्तब्ध सो गया है और उसकी पत्नी संयोग में भी वियोग का अनुभव करती हुई उसे कोस रही है –

(कर्दममग्नहलमुखकर्षण शिथिले पत्यौ प्रसुप्ते।
अप्राप्त मोहनसुखाधनसमयम् पामरी शपति)।

जैन पुराणों में कृषक को **कर्षक** तथा हलवाहक को **कीनाश** कहा गया

है। महापुराण के अनुसार कृषक भोले-भाले, धर्मात्मा, वीतदोष तथा क्षुधा इत्यादि क्लेशों के सहिष्णु तथा तपस्वियों से बढ़कर होते थे।

महापुराण में मानव की आजीविका हेतु छह प्रमुख साधनों का उल्लेख है – असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या तथा वाणिज्य। जैन पुराणों से ज्ञात होता है कि उस काल में जीविका के मुख्य आधार कृषि तथा पशु-पालन थे।

कृषि में कुशल किसान 'कृषि पाराशर' कहलाता था। हलों की संख्या कृषि की समृद्धि को बताने वाली थी और गृहस्थ को स्वयं खेती करने का आदेश था।

ऋग्वेद में लोगों को कृषि करने का स्पष्ट आदेश मिलता है –

'अक्षैर्मा दीव्या कृषिमित्कृषस्व'।

अथर्ववेद में जुआरी को भी जुआवृत्ति छोड़कर कृषिकर्म में प्रवृत्त होने की सलाह दी गई है। इतना ही नहीं, राजा के लिए भी आदेश है कि वह कृषि को विशेष रीति से संवर्धित करे – *'नो राजां नि कृषिं तनोतु'।* अथर्व वेद में ही 'पृथ्वी सूक्त' के अंतर्गत भूमि को माता माना गया है और मानव को उसका पुत्र – *'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'।*

महाभारत में (शांति पर्व 89/24) उल्लेख है कि कृषक तथा वणिक् ही राष्ट्र को समृद्ध बनाते हैं इसलिए राजा को समाज के इस महत्वपूर्ण वर्ग पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिए – *'नरश्तेतरक्ष्य वाणिज्यं चाप्यनुष्ठितः'* उद्योग पर्व (38/12) में स्पष्ट उल्लेख है कि गृहस्थ को खेती का कार्य दूसरों पर न डालकर स्वयं करना चाहिए। इसी की गूँज घाघ की कहावतों में मिलती है – *'उत्तम खेती जो हर गहा'*।

'कृषि पाराशर' में लिखा है

अन्नं तु धान्यं संभूतं, धान्यं कृष्या विनान च।
तस्मात् सर्वे परित्यज्य कृषिं यत्न च कारयेत।।

भारतीय वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत कृषि कार्य अधिकतर वैश्य करते थे – *कृषि गोरक्ष्यजीविनः*। 'मनुस्मृति' में भी वैश्य कर्मों में कृषि, पशु-पालन तथा

ब्याज लेना गिनाया गया है। वैश्यों को खेत के गुण-दोष, बीज बोने की विद्या, प्रस्थ तथा वरुण आदि योगों का ज्ञाता और तोला-माशा तौल परिमाण संख्याओं का जानकार होना चाहिए। वैश्यों के इस कर्म को 'वार्ता' कहा गया है। कालांतर में पुरोहित तथा युद्धकर्मा राजन्यों को छोड़कर सारे लोग कृषि कर्म में योगदान करने लगे थे। 'महाभारत' में कृषिकर्मा द्विजातियों का उल्लेख है। राजा जनक द्वारा यज्ञ भूमि में हल चलाना इसका सूचक है कि क्षत्रिय भी कृषि कर सकते थे। 'जातकों' में ब्राह्मणों को भी कृषि कर्म में संलग्न दिखाया गया है। अनेक धर्मशास्त्रकारों द्वारा विशेष स्थिति में ब्राह्मणों के लिए कृषि कर्म उपयुक्त ठहराया गया है।

इतना होते हुए भी कहीं-कहीं कृषि वृत्ति को निंदनीय कहा गया है। बौद्ध तथा जैन धर्मों में अहिंसा पर अत्यधिक बल दिए जाने से धर्माचार्यों ने कृषि को हेय तथा त्याज्य बताया। स्वयं बुद्ध ने बौद्ध भिक्षुओं को कृषि वृत्ति न अपनाने का उपदेश दिया। 'मनुस्मृति' में भी (10/83-84) कहा गया है कि लोहे के मुख वाला हल भूमि तथा भूमि के अंदर निवास करने वाले जीवों का हनन करता है। इस कारण कृषिवृत्ति निंदनीय है। इसीलिए ब्राह्मणों को हल चलाना वर्जित था क्योंकि इससे जीवों की हिंसा होती है।

भारतीय कृषकों को ईश्वर तथा उसकी शक्ति में विश्वास था इसीलिए वे कृषि को प्रकृति की अनुकंपा पर निर्भर समझते थे और उत्तम सस्य तथा वर्षा के लिए जल के देवता वरुण, इन्द्र तथा अन्य देवी-देवताओं को पूजते थे। वे कृषि कार्य शुरू करने के समय तथा उसके समापन के समय भी कुछ मंत्रों का उच्चारण करते थे। वे शुभ मुहूर्त में ही कृषि कार्य प्रारंभ करते थे और सामयिक वर्षा के लिए यज्ञ करते थे।

गुप्तकाल में 'अर्थशास्त्र' के प्रणेता कौटिल्य ने (300 ई.पू.) कृषि शास्त्र को विस्तार दिया। उन्होंने 'सीताध्यक्षों' के लिए कृषि शास्त्र के अतिरिक्त शुल्ब शास्त्र (पैमाइश) तथा वृक्षायुर्वेद का ज्ञाता होना आवश्यक बताया। उन्होंने पशुपालन, पशु आहार, वन्य उपज, अभयारण्यों आदि के विषय में विस्तार से चर्चा की। 'महाभारत' में विदुर ने कहा है कि जिसे कृषि का ज्ञान न हो

वह समिति में प्रविष्ट न हो — *न नः स समितिं गच्छेद यश्चनोर्मि-वपेतकृषिम्'*। स्ट्रैबो ने भी लिखा है कि भारत में राजा उन व्यक्तियों को पुरस्कृत करता था जो अच्छी फसल उगाने के नवीन उपाय खोज निकालते थे। यह प्रथा आज तक 'कृषि विशारदों' तथा 'कृषि विशेषज्ञों' को पुरस्कृत करने के रूप में प्रचलित है।

इस तरह हमने देखा कि कृषि अत्यंत व्यापक शब्द है। वर्तमान में कृषि शास्त्र के अंतर्गत अनेक विषयों का — यथा मृदा विज्ञान, सस्य विज्ञान, उद्यान विज्ञान, मौसम विज्ञान का अध्ययन किया जाता है। तो क्या पतंजलि की या चाणक्य की कृषि के बारे में जो व्याख्या है वह उस काल के कृषि विज्ञान की समृद्धि की सूचक नहीं है?

□

अध्याय 2

भूमि

कृषि का आधार **भूमि** है। इसे ही हम **मृदा** या **मिट्टी** कहते हैं। भूमि, क्षिति और पृथ्वी पर्याय माने गए हैं। संस्कृत साहित्य में **भूमि** के अनेक पर्याय हैं। 'हलायुध कोश' में पृथ्वी के 37 पर्याय दिए गए हैं –

भूर्भूमिर्वसुधा वनिर्वसुमती धात्री धरित्री धरा।
गौर्गोत्रा जगती रसा क्षितिरिला क्षोणी क्षमा क्ष्माचला।।
कुःपृथ्वी पृथिवी स्थिरा च धरणी विश्वंभरा मेदिनी।
ज्यानंत विपुला समुद्रवसना सर्वंसहोर्वी मही।।
काश्यपी भूत धात्री च रत्नगर्भा वसुंधरा।
धराधारा च विज्ञेया तद्विशेषान्निबोधत।।

इतना ही नहीं, 'हलायुदध कोश' में काली मिट्टी (कृष्णमृत्तिका), पीली मिट्टी (पांडुभूमः), उर्वर मिट्टी (उदकभूमः), उर्वरा (सर्वसस्या), ऊसर आदि का भी उल्लेख है।

'अथर्ववेद' में 'पृथिवी सूक्त' में भूमि के अनेकानेक गुणों का वर्णन हुआ है।

'महाभारत' में भूमि के गुणों में स्थिरता, गुरुत्व, काठिन्य, प्रसवार्थता, गंध, संघातशक्ति, स्थापना और धृति के नाम गिनाए गए हैं।

सामान्यतया **'भूमि'** शब्द से उसकी सतह का ही बोध कराया जाता रहा है। राजा को समग्र भूमि का स्वामी कहा गया है। फलतः वह भूगर्भ स्थित संपत्ति का भी स्वामी समझा जाता था।

अंग्रेजी में Land, Soil तथा Country शब्द प्रचलित मिलते हैं। वर्तमान काल में लॉर्ड कुक ने 'भूमि' को Land कहते हुए उसकी वैधानिक व्याख्या

"कोई भूभाग, सतह या तत्संबंधी चरागाह, परती, ऊसर, बंजर, तलहटी, यहाँ तक कि गृह, किसी प्रकार का भवन" के रूप में की है। स्टेफन ने इसे और भी स्पष्ट किया है। उनके अनुसार भूमि से अंतस्थ और ऊर्ध्वगत का बोध होता है। **ऊर्ध्व** का तात्पर्य सतह है। तत्संबंधी आकाश भी उसी के अधिकार में माना जा सकता है। इसी तरह सतह के अनुसार भूगर्भ स्थित अंश को भी सम्मिलित किया जाता है।*

मोनियर विलियम्स ने भूमि के पर्यायों में अंग्रेजी शब्द Earth, Soil और Ground दिए हैं।

अतः **भूमि** व्यापक शब्द प्रतीत होता है। वर्तमान कृषि विज्ञान में Soil शब्द ही व्यवहृत होता है जिसके लिए **मृदा** या **मिट्टी** शब्द प्रयुक्त होते हैं। पहले Soil के लिए **मृत्तिका** शब्द भी प्रयुक्त होता था किंतु अब यह Clay (चिकनी मिट्टी) का समानार्थी बन चुका है। Land शब्द से अब मिट्टी नहीं, अपितु भूमि का बोध कराया जाता है जिसमें मिट्टी की व्यवहार्यता छिपी हुई है। अब कृषि विज्ञान के अंतर्गत **मृदा विज्ञान** (Soil Science) एक महत्वपूर्ण अंग बन चुका है जिसमें मिट्टी की उर्वरता, उसका सर्वेक्षण, उसका वर्गीकरण आदि सम्मिलित हैं।

फिर भी प्राचीन साहित्य में भूमि की संकल्पना की विशदता को दृष्टि में रखते हुए इस अध्याय में तत्संबंधी तथ्य दिए जा रहे हैं।

वैदिक काल में भूमि का वर्गीकरण उसकी उपयोगिता, उर्वरता या उपजाऊपन के आधार पर किया गया। इस तरह **उर्वर** तथा **अनुर्वर** भूमियाँ उल्लिखित हैं। उत्पादन क्षमता के आधार पर **तीन** विभाग किए गए – **आर्तना** (परती/अनुर्वर), **अप्नस्वती** (उर्वर) तथा **उर्वरा** (सर्वाधिक उपयुक्त)। अनुर्वर भूमि के अंतर्गत ऊसर, खिल (बंजर, परती) और जांगल (ग्रामों से दूर) उपविभाग भी पाए जाते हैं।

इसके अतिरिक्त **फसलों के आधार पर** भी विभाजन होता था। उदाहरणार्थ, धान उगाने वाले खेत **ब्रैहेय** और जौ वाले खेत **यव्य** कहलाते थे। 'तैत्तिरीय संहिता' में एक वर्ष में दो फसलें लेने का उल्लेख हुआ है – *द्विसंवत्सरस्य सस्यं पच्यते* (5.1.7.3)। वनस्पति विज्ञान के भारतीय जनक रॉक्सबर्ग ने लिखा है कि पश्चिमी जगत फसल-चक्र अपनाने के लिए भारत

का ऋणी है।**

कौटिल्य काल तथा महाकाव्य काल में जल सुविधा और विविध धान्योत्पादन क्षमता के आधार पर भूमि विभाजन किया गया। गुप्तकाल में आर्थिक और औषधीय दृष्टि से भी विभाजन हुआ। चरक तथा सुश्रुत औषधीय दृष्टिकोण के समर्थक थे जिन्होंने मिट्टी की प्रकृति पर विशेष ध्यान दिया। चरक ने मिट्टी की प्रकृति के अनुसार भूमि की तीन कोटियाँ बताईं — त्रिविधः खलुदेशः जांगलःआनूपः साधारणश्चेति। ये हैं — *जंगल*-वन्य प्रदेश जहाँ औषधियाँ उत्पन्न होती थीं। 2. *अनूप* — तर भूमियाँ, जो सर्वाधिक उपजाऊ होती थीं तथा 3. *साधारण*।

आर्थिक दृष्टि से (वस्तुतः उपजाऊपन पर आधारित) भूमि पाँच श्रेणियों में विभाजित हुई —

1. कृषित यानी कृषि योग्य भूमि (खेतिहर)
2. परती अथवा बंजर भूमि
3. निवास योग्य भूमि (बस्ती)
4. चरागाह
5. जंगल तथा उद्यान।

वस्तुतः **कृषित** ही वेदों की उर्वरा/क्षेत्र या **हल्य** भूमि है। जैन ग्रंथ 'निशीथचूर्णी' में इसे खेत कहा गया है। यह कृषित भूमि दो प्रकार की थी

(अ) शुष्क भूमि तथा (ब) नमभूमि — वप्प, क्यार (केदार)।

कृषित भूमि हर प्रकार के अन्नों के लिए उपयुक्त नहीं होती थी।

अमरकोश (2/9/6-7) में धान्योत्पादन की उपयुक्तता के आधार पर खेतों के नाम दिए गए हैं, यथा —

ब्रैहेय (ब्रीहि), शालेय (शालि), यव्य (जौ), षष्टिक्य (साठी), तिल्य/तैलीन (तिल), उम्य-औमीन (अलसी), अणव्य-आणवीन (चीना), भंग्य-भांगीन (सनई)।

पाणिनि तथा पतंजलि ने भी फसलों के अनुसार खेतों का नामांकन किया है। कृषित भूमि के अतिरिक्त ऊसर, बंजर, फरती आदि अकृषित भूमि के उल्लेख हैं।

ऊसर या नोनी मिट्टी फसलरहित होती है (उषवान, ईरिण)। पतंजलि ने गोचर, व्रज तथा गोष्ठ का निर्माण ऊसर भूमि में कराने को कहा है। **खिल** (परती) तथा **अप्रहत** (बिना जोती) भूमि का भी उल्लेख है। अनेक वर्षों तक न जोतने पर **हल्य** भूमि भी खिल बन जाती है।

'आवश्यक चूर्णी' में **हल्य** भूमि उत्पादन की दृष्टि से दो प्रकार की बताई गई है — उद्घात (काली भूमि) तथा अनुद्घात (पथरीली भूमि)। काली भूमि नीची तथा कृषि योग्य बताई गई है।

वन्य भूमि — अमरकोश में वन को अटवी, अरण्य, विपिन, गहन, कानन, वन नामों से पुकारा गया है।

बाण ने 'हर्षचरित' में वन्य भूमियों में की जाने वाली खेती को तीन प्रकार का बताया है।

1. किसानों द्वारा कुदाली से परती और कठोर जमीन को तोड़ कर बीज उगाने लायक बनाई गई भूमि।
2. झूम प्रणाली की खेती जो आदिवासियों द्वारा की जाती थी।
3. ग्राम्य कृषि — जो हल-बैलों द्वारा की जाती है।

वन के अलावा नगर के भीतर और बाहर उपवन या उद्यान होते थे। वनों से चंदन, फल, औषधि, मसाले भी प्राप्त किए जाते थे।

वराहमिहिर ने 4 प्रकार की भूमियों का उल्लेख किया है — सफेद, लाल, पीली तथा काली। सफेद भूमि ब्राह्मणों के लिए, लाल ऋषियों के लिए, पीली वैश्यों के लिए तथा काली शूद्रों के लिए थी।

सितरक्तपीतकृष्णाविप्रादीनां पशयस्ते भूमिः।
गन्धश्च भवति यस्यां घृतरुधिरान्नाद्यमद्यः सम।।

प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भारत को पाँच भागों में बाँटकर प्रत्येक

भाग की मिट्टी की प्रकृति और विशेषता बताई है –

"भारत के उत्तरी भाग के पहाड़ी भाग में काली मिट्टी है, पूर्वी भाग उपजाऊ मैदान है, दक्षिणी भाग में वनस्पति की प्रचुरता है और पश्चिमी भाग की मिट्टी कंकरीली पथरीली है।"

'काश्यपीय कृषि सूक्ति' में भूमि के पांच प्रकार बताए गए हैं – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा मिश्रित गुण वाली।

आगे चलकर मुगल काल में भूमि का वर्गीकरण नितांत आर्थिक दृष्टि से किया गया।

---

* इस अध्याय में नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं. 2017 वर्ष 65 अंक 1-4, पृष्ठ 349 में प्रकाशित सामग्री का आंशिक उपयोग किया गया है।

हलायुध कोश 2/156

** A concise History of Science in India (Ed. Bose, Sen and Subbarappa, INSA, Delhi).

□

अध्याय 3

कृषि क्रियाएँ एवं उपकरण

अनुमान है कि ताम्र-पाषाण युग में ही भूमि जोतने के लिए हल का प्रयोग होने लगा था। वेदों में सबसे महत्वपूर्ण कृषि उपकरण **हल** का उल्लेख मिलता है। अवेस्ता में भी कृषि के लिए हल-बैल के प्रयोग का विवरण प्राप्त है।

वैदिक साहित्य में हल के लिए **सीर** अथवा **लांगल** शब्द मिलते हैं। उल्लेख है कि आश्विन देवताओं ने मनु को खेती करना और हल चलाना सिखाया। अथर्व वेद में पृथ्वीवैन्य को हल का अन्वेषक कहा गया है।

ये हल लकड़ी के बने होते थे और दो या छह, आठ, बारह या चौबीस बैलों की सहायता से खींचे जाते थे। हल का नुकीला भाग फाल/फार कहलाता था। 'कल्पसूत्रों' में लौह फाल का उल्लेख मिलता है।

भूमि खोदने का उपकरण **खनित्र** (बेलचा या कुदाल) था। जल निकालने के लिए **बाल्टी** को चमड़े की रस्सी में बाँध कर चक्र के सहारे बैलों या मजदूरों की सहायता ली जाती थी।

फसल काटने के लिए **दात्र** या **लवित्र** अथवा **पर्शु** (हँसिया) का प्रयोग होता था।

अनाज को भूसे से अलग करने के लिए खलिहान में **मणनी** की जाती थी।

'शतपथ ब्राह्मण' में कृषि की विविध क्रियाओं का उल्लेख हुआ है –

कृषन्तो ह स्मैव पूर्वे वपन्तो
यन्ति लुनन्ति अपरे मृणन्त।

ये क्रियाएँ थीं – जोतना, बोना, काटना तथा माँडना।

जब खेत जोता जाता था तो उस समय **सीता यज्ञ** किया जाता था।

हल से बनी कूँड़ **सीता** कहलाती थी। जुताई के लिए शुभ नक्षत्र रोहिणी अथवा ज्येष्ठ मास बताया गया है।

'अष्टाध्यायी' में हल तथा उसके भागों का उल्लेख हुआ है। बड़ा हल **हलि** कहलाता था और किसान को **हालिक** या **सैरिक** कहते थे।

बैलों को जुएँ में जोतकर गाँव से दो कोस की दूरी तक ले जाकर खेत जोते जाते थे। **कुदाल** और **फावड़े** से भी खेत जोते जाते थे। बौद्ध तथा जैन साहित्य में भी खेत निराने, कंदमूल खोदने के लिए **कुदाल** के प्रयोग किए जाने का उल्लेख मिलता है।

जैन ग्रंथों में हल के लिए **हल** तथा **कुलिश** दोनों शब्द प्रयुक्त हुए हैं। हल चलाने को **स्फोत कर्म** बताया गया है। अन्न को साफ करने के लिए **सूप** (सुप्पकत्तर) का प्रयोग मिलता है।

पाणिनि ने खेत की दुबारा-तिबारा जुताई के लिए 'द्वितीया करोति', 'तृतीया करोति' शब्दों का प्रयोग किया है।

बीज

'ऋग्वेद' में बीज के लिए **तोकमन** शब्द व्यवहृत है। बीजों के संग्रह के लिए भंडार के अर्थ में **स्थिवि** शब्द मिलता है।

'जैन आगमों' में धान्य की सुरक्षा के लिए गोलाकार या लंबोतरे भंडार बनाकर ऊपर से गोबर से लीपने या बाँस तथा फूस से ढकने का उल्लेख मिलता है। व्यक्तिगत कोठारों के अलावा राजकीय गोदामों का भी उल्लेख मिलता है।

कौटिल्य ने बीज गोदामों को ऊँची जगहों पर बनाने की सलाह दी है।

ऐसा माना जाता था कि बीजों की अंकुरण शक्ति कम से कम एक वर्ष तथा अधिक से अधिक 3, 5 या 7 वर्षों के बाद समाप्त हो जाती है। यह शक्ति बीज की प्रकृति पर निर्भर करती थी।

कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' मे (2/24/24-27) बीज बोने के पूर्व उन्हें संस्कारित करने की सलाह दी है। धान के बीजों को सात दिन तक रात की

ओस में और दिन की धूप में रखना चाहिए। बोए जाने वाले ईख के पोरों की कटी जगह पर शहद, घी तथा सूअर की चर्बी के साथ गोबर मिलाकर लगाने की संस्तुति की जाती थी। कपास के बीजों को गोबर से लपेट कर बोने का उल्लेख है।

मनु ने 'मनुस्मृति' में उत्तम शस्य के लिए बीज तथा क्षेत्र दोनों का उत्तम होना आवश्यक बताया है।

ज्योतिर्विद वराहमिहिर ने बोने के लगभग एक मास पूर्व से ही बीजों को घी में लपेट कर प्रतिदिन रात को दूध में भिगोने तथा प्रातःकाल निकाल कर धूप में सुखाने और अंत में सूअर अथवा हिरन के मांस से लपेट कर बोने की संस्तुति की है।

बीज की मात्रा तथा बुआई

पाणिनि ने बाजरा एक पाव, मक्का तीन पाव प्रति बीघे बोने का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि बुवाई शुभ मुहूर्त में की जाए। शालि ब्रीहि, तिल प्रियंगु को पावस में तथा मसूर, यव, गोधूम और सरसों को ऋतु के अंत में (कार्तिक में) बोया जाता था। 'अमरकोश' में बीजों को नाप कर खेत में डाले जाने का उल्लेख है (यथा – आढकिक, खारिक आदि)।

'भाष्य' में **मिलवा** धान्य, उड़द तथा तिल बोने का उल्लेख है।

खेती के प्रकार

जैन ग्रंथ (स्थानांग) में चार प्रकार की खेती बताई गई है –

1. **वापिता** – इसमें धान्य एक बार बोया जाता था।
2. **परिवापिता** – धान्य को दो-तीन बार में एक स्थान से दूसरे स्थान पर रोपा जाता था।
3. **निंदिता** – खेतों की घास निकाल कर धान्य बोया जाता था।
4. **परिनिंदिता** – दो-तीन बार घास निराई की जाती थी।

ईख पेर कर गुड़ बनाने तथा बीजों से तेल निकालने के लिए **कोल्हू**

का प्रयोग होने लगा था। **बैलगाड़ियों** का प्रयोग फसल से प्राप्त धान्य तथा भूसा ढोने के लिए किया जाता था। पतंजलि तथा जैन ग्रंथकारों ने बैलगाड़ी के प्रयोग का उल्लेख किया है।

वराह मिहिर ने वृक्षों के रोपने का विस्तृत उल्लेख किया है (प्रसाद लक्षणाध्याय-2)।

इस तरह उस काल की कृषि आज के ही समान कृषि का समूचा ढाँचा प्रस्तुत करने वाली थी।

पशु विज्ञान

कृषि के साथ पशु विज्ञान पर भी ध्यान दिया जा रहा था। वराहमिहिर ने बैलों के शुभ लक्षणों का उल्लेख किया है (बृहत्संहिता, गोलक्षणाध्याय 7-16, 19)। उन्होंने बैलों के शरीर के आकार प्रकार, उनके भार वहन करने तथा द्रुतगति से चलने की क्षमता का वर्णन किया है।

व्याकरणाचार्य हेमचंद्र के 'देशी नाममाला' में कृषि संबंधी व्यापक शब्दावली मिलती है। ऐसे 425 शब्दों की एक सूची 'हिंदुस्तानी' पत्रिका (जुलाई-सितंबर, 1958) में प्रकाशित हुई है। उसमें से पशुओं, अन्नों, कृषि यंत्रों तथा घास-पात से संबद्ध कुछ देशी शब्दों को चुनकर यहाँ दिया जा रहा है, जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कृषि विषयक ज्ञान को नाना प्रकारों से साहित्य में स्थान दिया गया।

पशु संबंधी शब्दावली

देशी नाम	खड़ी बोली में
गड्डरी	बकरी
घोड़ो	घोड़ा
छेलो	छाग/बकरी
पड्डी	पडिया
बइल्लो	बैल
ओसारो	गोशाला

खली	खली
हड्डं	अस्थि/हड्डी
गोबरं, गोहुरं	गोबर

घास-पात संबंधी शब्दावली

कतवार	घास-पात, कयार
झंखरो	झाड़-झंखाड़
झँड़	झाड़ी

अन्न संबंधी शब्दावली

अणुइओ	चना
उडिदो	उड़द
चाउला	चावल
अलसी	अलसी (सं. अतसी)
पलही, फलही, वलरी, ववणी	कपास

कृषि यंत्र विषयक शब्दावली

आगत्ती	ढेंकुली
इल्लो	हँसिया
कोल्हुओ	कोल्हू
गड्डी	गाड़ी
ढेंकी	धान कूटने का यंत्र, ढेंकली
खत्त	खात, खत्ती
डहरी	डेहरी, अन्नपात्र

अन्य

तल्लं	तालाब
अवड़ो	कुँआ (सं. अवट)
लुअं	लवनी, कटाई

□

अध्याय 4

खादें

प्राचीन काल में गोबर का उपयोग खेतों में डाली जाने वाली **खाद** के लिए होता था। खादें खेतों की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के काम आती थीं।

वेदों में गाय के गोबर के लिए करीषिणी, शकृत, शकन्, शक्, शाक जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है। 'अथर्ववेद' में गाय के गोबर के लिए एक अन्य शब्द **शारि शाक** प्रयुक्त मिलता है जिसे शालि नामक धान के लिए उपयोगी बताया गया है। 'शतपथ ब्राह्मण' में भी **करीषिणी** शब्द खाद के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

कौटिल्यीय 'अर्थशास्त्र' में तीन प्रकार की खादों का उल्लेख है — **गोरिथ** (हड्डी), **गोशकृद** (गोबर) तथा **अशुष्क कटु मत्स्य**। बीजों के अंकुरित हो जाने पर छोटी मछलियों की खाद उपयोगी बताई गई है। इसी तरह ईख के खंडों तथा कपास आदि के बीजों को गोबर से लपेट कर बोने का उल्लेख मिलता है।

'बृहत्संहिता' (अध्याय 54) तथा 'अग्नि पुराण' (अध्याय 281) में वृक्षायुर्वेद अध्याय के अंतर्गत खाद का अपेक्षाकृत विस्तृत वर्णन मिलता है। 'बृहत्संहिता' में वल्ली, गुल्म, फल और फूलों के लिए एक आढक तिल, दो आढक बकरी या भेड़ की बिष्ठा, एक प्रस्थ जौ का आटा, एक तुला गोमांस को एक द्रोण पानी में मिलाकर सात दिनों तक रखने के बाद इस मिश्रण को पेड़ों की जड़ों में देने की संस्तुति है।

'अग्नि पुराण' में भी 'बृहत्संहिता' से मिलती-जुलती खाद का वर्णन है — *गोमांसमुदकञ्चैव सप्तरात्रंनिधाययेत* (यदि फल-फूलों की वृद्धि करनी हो तो घी, ठंडे दूध, तिल, बकरी और भेड़ की विष्ठा, यवचूर्ण, गोमांस — इन्हें सात दिन तक सड़ा कर पौधों को दें)।

बराहमिहिर ने पौधों में अच्छे पत्ते निकलने के लिए मछली के धोवन जल का प्रयोग भी सुझाया है। 'अग्नि पुराण' में आम के लिए मछली धोवन श्रेयस्कर

कहा गया है (मत्स्याम्भुसातुसेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनः)। बंगाल में प्रचलित खना की कृषि कहावतों के अनुसार आज भी आम के बागानों में मछली के धोवन डालने की प्रथा है।

'शाङ्र्गधर पद्धति' के उपवन विनोद प्रकरण में एक विशिष्ट खाद 'कुणपजल' के तैयार करने का उल्लेख मिलता है। यह कुणपजल पेड़ों के लिए पुष्टिकारक है —

कुरंग किटिमत्स्यानां मेषच्छागल खड्गिनाम्
मांसं ग्राह्यं यथालाभं मेदो मज्जावसास्तथा।। १७१ ।।
तान्सर्वानेकतः कृत्वा वह्नौ नीरेण पाचयेत्
संपक्कं हि क्षिपेद्भाण्डे तत्र दुग्धं च निक्षिपेत् ।। १७२ ।।
चूर्णीकृत्य खलिर्छ्या तिलानां माक्षिकं तथा
स्विन्नांश्च सरसान्माषांस्तत्र दद्यात् घृतम् तथा ।। १७३ ।।
उष्णजलं क्षिपेत्तत्र मात्रानास्तीह कस्यचित्
पक्षैकं स्थापितं भाण्डे कोष्ण स्थाने मनीषिणा।। १७४ ।।
कुपणस्तु भवेदेव तरुणां पुष्टिकारकः ।।

(हरिण, सुअर, मछली, भेड़, बकरी और गैंडा या भैंसा का मांस, चर्बी, मज्जा और वसा को मिट्टी के बर्तन में अच्छी तरह उबालना चाहिए। फिर दूध, तिल की खली, शहद, माष, तथा अन्य दालों का रसा, घी और पानी यथेच्छ मात्रा में मिलाना चाहिए। पंद्रह दिनों तक फिर शुष्क स्थान में रख छोड़ना चाहिए। इस प्रकार कुणप तैयार हो जाएगा)।

महाकवि बाण ने 'हर्षचरित' में (7/229) पशुओं के गोबर तथा कूड़ा-करकट को एक स्थान पर रखने और खाद बनने पर बैलगाड़ियों की सहायता से खेतों में डालने का वर्णन किया है जिसे क्षेत्र संस्कार कहा जाता था।

पराशर मुनि रचित 'कृषि पाराशर' ग्रंथ में खादों के विषय में विस्तृत चर्चा है (हमने पृथक् अध्याय में इसका वर्णन दिया है)। पराशर का कथन है 'माघ के किसी पुनीत दिवस पर गोबर के गड्ढ़ों की पूजा की जानी चाहिए। फिर फावड़े से उसे उलटना-पलटना चाहिए। इसके बाद उसे सुखाकर चूर्ण करना चाहिए। फाल्गुन मास में इसे गड्ढों के भीतर भर देना चाहिए और बीज बोते समय ही खेतों में डालना चाहिए। बिना खाद के धान उगता तो है पर उसमें बीज नहीं आते'।

पराशर से प्रेरणा प्राप्त करके इस देश के किसान खेती करते रहे और आगे चलकर लोक में खना, घाघ और भड्डरी की कृषि कहावतों के रूप में पराशर द्वारा प्रदत्त ज्ञान प्रचलित होता रहा। ऐसा अनुमान है कि डाक-भड्री की मूल रचना अपभ्रंश में हुई। कालांतर में वही अवधी, मगही, भोजपुरी तथा बंगला में अवतरित हुई।

घाघ ने खेती में खादों की महत्ता, खादों के प्रकार का जितना विशद वर्णन किया है वह अभूतपूर्व है। उसने गोबर ही नहीं, मैला, हड्डी का चूरा, सनई के डंठल, नीम की जूठी, नील की खली का खाद रूप में प्रयोग करने की जोरदार अपील की।

भूमि या खेतों को उपजाऊ बनाने में खादों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वर्तमान समय में कृत्रिम खादों यानी उर्वरकों ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया है। जो कृषि जैव खादों पर होती चली आ रही थी, वह अब कृत्रिम या अजैव खादों के बल पर की जा रही है।

□

अध्याय 5

सिंचाई

खेती में सिंचाई का अत्यधिक महत्व है। वैदिक काल में सिंचाई के दो साधन थे – प्राकृतिक और कृत्रिम। वर्षा, नदी, झील, झरना – ये प्राकृतिक स्रोत थे। सिंचाई के लिए जल प्राप्त करने के तो कुँए, जलाशय (तालाब), नहरें आदि कृत्रिम साधन थे।

वेदों में वर्षा का देवता इंद्र माना गया। वह विघ्नों को दूर करके वर्षा करता था। निश्चय ही यह इंद्र सूर्य है।

'ऋग्वेद' में चार प्रकार के जलों का उल्लेख मिलता है – दिव्य, स्रवणशील, खनित्रिमा और स्वयंजा। इनमें नदियों और झरनों के जलों की भी गणना है। 'ऋग्वेद' और 'यजुर्वेद' के अलावा परवर्ती ब्राह्मण साहित्य में सिंचाई के लिए कूप के प्रयोग का वर्णन मिलता है। इसमें से चमड़े के वरत्रा, लकड़ी की बाल्टी और अश्म चक्र का प्रयोग करके जल निकाला जाता था। **खनित्रिमा आपः** संभवतः सिंचाई जल का द्योतक था। तालाबों तथा जलाशयों का वर्णन भी वेदों में आया है।

सिंधु सभ्यता काल में कृषक सिंचाई के लिए नदियों के जल का उपयोग करते थे। मोहनजोदड़ो में एक विशाल स्नानागार मिला है जो इसका प्रमाण है। जलाशयों से खेतों तक जल पहुँचाने के लिए नालियाँ (कुल्या) बनाई जाती थीं।

वर्षा दो तरह की बताई गई है – **पूर्व वर्षा**, जो सावन-भादों में होती थी और **अपर वर्षा** जो बाद में होती थी। वृष्टि की माप **वर्ष प्रमाण** कहलाती थी। यह माप दो प्रकार की होती थी – एक तो जिसमें खेत लबालब भर जाएँ और दूसरी वह जिसमें खेत में बने खुर के निशान मात्र पानी से भरें **(गोष्पद)**। 'मिलिन्दपन्ह' में वर्ष में तीन बार नियमित वर्षा का उल्लेख मिलता

है।

'अर्थशास्त्र' में वर्षा प्रमाण के संदर्भ में जांगल, अनूप आदि शब्दों का व्यवहार हुआ है।

षोडश द्रोणं जांगलानां वर्ष प्रमाणम्

ग्रीक लेखक डायडोरस ने भारत में जाड़े और ग्रीष्म की वर्षा का उल्लेख किया है। उसने नदियों से सिंचाई का भी उल्लेख किया है। मेगस्थनीज ने भी ऐसे ही उल्लेख किए हैं।

जातकों में नदियों से सिंचाई करने के प्रमाण मिलते हैं।

देवमातृक प्रदेशों के अतिरिक्त **नदी मातृक** या **अदेव मातृक** प्रदेशों का उल्लेख मिलता है जिसका आधार कृत्रिम जल स्रोतों द्वारा खेतों की सिंचाई करना था। 'रामायण' तथा 'महाभारत' में दुर्भिक्ष से बचने के लिए कृत्रिम साधनों से सिंचाई का उल्लेख मिलता है। 'अर्थशास्त्र' में कृषि की उन्नति के लिए राजा को निर्देश है कि वह कृत्रिम साधनों से सिंचाई का प्रबंध करे। ये कृत्रिम साधन थे – नहरें, जलाशय, कुएँ, बाँध, तालाब तथा झीलें।

हस्तिनापुर, नई दिल्ली, रोपड़, उज्जैन, मथुरा तथा नासिक में हुई खुदाइयों से 600 ई. पू. से लेकर 200 ई. पू. तक के कूप मिले हैं।

'अष्टाध्यायी' में नहरों से सिंचाई का उल्लेख नहीं मिलता किंतु भाष्यकार ने **कुल्या** का उल्लेख किया है जो नहरों की नालियाँ थीं। महाभारत काल में **कुल्या** का प्रयोग मिलता है। 'निशीथ चूर्णी' में इसे **सारिणी** कहा गया है। हाँ, कुएँ से पानी निकालने के लिए बैलों द्वारा चालित **रहट** का प्रयोग मिलता है। 'अर्थशास्त्र' में भी रहट का उल्लेख हुआ है। बौद्ध ग्रंथ 'चुल्लवग्ग' में कुएँ से पानी निकालने के लिए तुला, चक्र तथा बैलों की जोड़ी के प्रयोग किए जाने का विवरण मिलता है। 'अर्थशास्त्र' में प्रसंग मिलता है कि यदि किसान अपने धन, श्रम से नदी, झील या कुएँ में रहट लगाकर खेत की सिंचाई करता है तो उसे पैदावार का 1/4 राजा को कर स्वरूप देना चाहिए।

जैन आगमों तथा 'काश्यपीय कृषि सूक्ति' में सिंचाई के उपयुक्त सारे

साधनों का उल्लेख मिलता है। मनु ने जलाशय में बाँध की सुरक्षा करने की बात कही है। कलिंग राजा खारवेल ने एक प्राचीन नहर का विस्तार कराया था। 'मिलिन्दपन्ह' में भी नहरों, जलाशयों एवं बहते जल को बाँध कर रोकने तथा धान के खेतों को सींचने का वर्णन हुआ है। 'काश्यपीय कृषि सूक्ति' में 4 से लेकर 10 हाथ चौड़ी नहरें बनाने का उल्लेख है। साथ ही यह भी चेतावनी दी गई है कि बलुही जमीन में नहरें न खोदी जाएँ। कुएँ बनाने में ईंटों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

'बृहत्संहिता' (अध्याय 54) में जल विज्ञान का वर्णन **उदाकार्गलम** (उदक + अर्गला) के अंतर्गत किया गया है। **अर्गला** जलमार्ग में अवरोध, प्रस्तर, मिट्टी आदि का सूचक है। **उदक** का अर्थ भूतल पर लाया गया जल है। उदकार्गलम भूगर्भ में चिन्हित जल स्रोतों की खोज तथा उसकी उपलब्धि है।

वराहमिहिर ने पृथ्वी के भीतर जल की स्थिति का भी वर्णन किया है। इसके लिए धरातल पर उगे वृक्षों को आधार बनाया है। यदि जलरहित भूमि में जामुन का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ उत्तर दिशा में दो पुरुष तुल्य नीचे पूर्व सिरा होती है। इसी तरह यदि जलरहित भूमि में गूलर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम ढाई पुरुष नीचे सुंदर जल वाली सिरा होती है। जहाँ पर पाँव से प्रहार करने पर गंभीर शब्द हो वहाँ साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने तालाबों से सींचे जाने वाले अनेक प्रदेशों का वर्णन किया है। 'अमरकोश' में नहरों को **कर्षू** तथा **जल निर्गम** कहा गया है।

वराहमिहिर ने (बृहत्संहिता 55/9) रोपे गए वृक्षों को गर्मी में सुबह-शाम दो बार, जाड़े में केवल एक बार और बरसात में जब मिट्टी सूख जाए तो सिंचाई करने की सलाह दी है। उन्होंने अतिवृष्टि, सुवृष्टि तथा अनावृष्टि के लक्षण दिए हैं। कालिदास ने उद्यानों को सींचने के लिए कुल्याओं का और फसलों को ठीक से सींचने के लिए खेतों को क्यारियों में (केदार) बाँटने का उल्लेख किया है।

उपर्युक्त विवरण बताता है कि कृषि कर्म में सिंचाई का महत्वपूर्ण स्थान था जिसके लिए विविध साधनों का उपयोग किया जाता रहा है। वर्तमान काल में नदियों से नहरें निकाल कर तथा भौम जल को नलकूपों के द्वारा निकाल कर खेतों की सिंचाई की जाती है। समस्त उपलब्ध जल का बहुत बड़ा अंश सिंचाई में प्रयुक्त होता है जिससे अच्छी उपज संभव हुई है।

□

अध्याय 6

कृषीय फसलें तथा वनस्पतियाँ

कृषि केवल धान्य फसलें उगाने का विज्ञान नहीं है। कृषि के अंतर्गत 'वृक्षायुर्वेद' का उल्लेख बारंबार किया गया है। आजकल वनस्पतियों या वृक्षों के विज्ञान को **वनस्पति विज्ञान** कहा जाता है जो कृषिशास्त्र का महत्वपूर्ण अंग है। धान्य फसलों के अलावा उद्यानों में लगाए जाने वाले वृक्षों की जानकारी भी आवश्यक है। यह **उद्यान विज्ञान** कहलाता है।

जैसा कि पिछले अध्यायों में उल्लेख हुआ है कि धान तथा यव मुख्य फसलें थीं। इसके बाद दालों, तरकारियों तथा फलों के नाम आते हैं। 'काश्यपीय कृषि सूक्ति' में स्वाद तथा रंग के अनुसार धान के तीन प्रकार बताए गए हैं — शालि, कलम तथा षष्ठिक। शालि के 26 प्रकार गिनाए गए हैं। कलम चमकीला, सुगंधित धान है और षष्ठिक गंधहीन। गन्ने की खेती का भी उल्लेख मिलता है।

तरकारियों में ककड़ी, बैंगन, लौकी, मिर्च तथा मसालों में हल्दी, अदरक, इलायची, काली मिर्च, धनिया के नाम गिनाए गए हैं। फलों में आम, अंगूर, खजूर, नारियल और केला का उल्लेख मिलता है।

वनस्पतियों के भिन्न-भिन्न भागों, वृक्षों द्वारा जल ग्रहण करने, वृक्षों के नामकरण तथा भोजन के काम में आने वाले अंगों, विविध प्रकार के धान्यों के विषय में भी खंडित सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं जिन्हें एकत्र करके उनमें तारतम्य स्थापित करने का प्रयत्न इस अध्याय में हुआ है। 'अथर्व वेद' के एक मंत्र में (8/7/4) अनेक पौधों का विवरण प्राप्त होता है —

प्रस्तृणतीस्तंबिनीरेकशुंगाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि।
अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयाभि ते वीरुधो
वैश्वदेवीसग्राः पुरुषजीवनीः।।

(प्रस्तृणती (फैली हुई), स्तंबिनी (झाड़ीदार), एक शुंगा, प्रतन्वती, औषधियों के प्रति कहता हूँ जो अंशुमती, कांडिनी और विशाखा हैं, उन्हें मैं बुलाता हूँ। ये उग्र हैं, वैश्वदेव हैं और पुरुष को जीवन देने वाली हैं)।

एक अन्य मंत्र में पुष्पवती, प्रसूमती, फलिनी तथा अफला का उल्लेख है।

'विष्णु पुराण' (7/37-39) में धान के पौधे में अंकुर, नाल, पत्र, पुष्प, क्षीर, तुष, कोष, बीजकोश, तंडुल और कण का उल्लेख है।

जिन पौधों के प्रकांड (स्कंध) अति दृढ़ होते हैं उन्हें **वनस्पति या वानस्पत्य** कहा गया है। वल्ली, व्रतति या **लता** स्वयं खड़ी नहीं रह सकतीं। जिन पौधों में प्रकांड नहीं होते वे **अप्रकांड या स्तंब** कहलाते थे। जिन पौधों की जड़ें और शाखाएँ छोटी होती हैं उन्हें **क्षुप** कहते थे। शाखाविहीन धड़ या तना **स्थाणु** या **शंकु** कहलाता था।

दूसरे पौधों के ऊपर उगने वाले पौधे **(वृक्षोपरिवृक्ष) परगाछा** कहे गए हैं। परोपजीवी पौधों को **वृक्षादनी**, वृक्षों में से अंकुरित होने वाले अन्य पौधे **वृक्षरुहा**, या **छिन्नरुहा** कहलाते थे।

सुश्रुत ने **कुकुरमुत्ता** को **छत्र** या **छत्रक** कहा है जो वेणु, पलाल, गन्ने या गोबर (करीष) पर उगता है।

उन्होंने पृथ्वी के नीचे रहने वाले तनों और मूलों को **कंद** कहा है। उदाहरणार्थ, शतावरी, मृणाल, श्रृंगाटक (सिंघाड़ा), कशेरुक (कसेरू), आलू, उत्पल (कमल), सूरण आदि।

'बृहदारण्यक उपनिषद्' में वृक्ष और पुरुष के शरीर की सुंदर उपमा प्राप्त होती है –

यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा।
तस्य लोमनि पर्णानि त्वगस्योत्पाटिकाबहिः (१)

'षड्दर्शन समुच्चय' पर गुणरत्न की टीका (1350 ई.) में भी मानव जीवन

और वनस्पति जीवन का सादृश्य दिखाया गया है जो पादप पोषण का द्योतक है।

'जैसे मानव शरीर का पोषण माँ के दूध, भोजन, ओदन आदि से होता है इसी प्रकार वनस्पतियों का शरीर भी भूमि के जल, आहार आदि से पोषण प्राप्त करता है और जिस प्रकार उचित और अनुचित आहार से मानव के शरीर की क्रमशः वृद्धि और हानि होती है उसी तरह वनस्पति शरीर की भी।'

'महाभारत' के शांति पर्व (अध्याय 184) में विस्तार से दिया गया है कि पौधे भूमि से किस तरह भोजन ग्रहण करते, उसे शरीर के विभिन्न भागों में कैसे पहुँचाते और उसका पाचन करते हैं। लिखा है कि जिस तरह कमलनाल को मुख में लगा कर पानी पीया जा सकता है उसी तरह वायु की सहायता से पौधे (जड़ों के द्वारा) पानी पीते हैं (पादप)।

इतना ही नहीं, वृक्षों को **चैतन्य** बताया गया है – गर्मी में इनके पत्तों का झुलसना, वायु, अग्नि और विद्युत् घोष से प्रभावित होना, गंध, धूप आदि से इनके रोगों का दूर होना और फिर से पुष्पित होना, मूलों द्वारा रस का पान करना, काटे जाने पर और विरोहण पर सुख-दुख, वृक्ष के शरीर पर लता का लिपटना – ये त्वक् शक्ति, श्रवण शक्ति, घ्राण शक्ति, दृश्य शक्ति के सूचक हैं।

काश्यप ने दूब से रहित, नम, मुलायम भूमि में 12 से 20 हाथ तक की दूरी पर वृक्ष लगाने के निर्देश दिए हैं। अधिक निकट होने से वृक्ष ठीक से फलते नहीं। 'अग्नि पुराण' में भी ऐसा ही विधान है।

चरक ने 'कल्पस्थान' में वत्सक पौधे के पुरुष-स्त्री भेद का उल्लेख किया है।

बुद्धघोष ने 'दीघनिकाय' की टीका में पौधों के वंश विस्तार की पाँच विधियाँ दी हैं – मूलबीजम, खंडबीजम, फलुबीजम, अग्गबीजम तथा बीजबीजम्।

चरक, सुश्रुत तथा वराहमिहिर ने पौधों को देश-काल पर निर्भर बताया

है और जंगल, आनूप, साधारण – ये तीन प्रकार निश्चित किए हैं।

पौधों का नामकरण भी शास्त्रीय पद्धति से किया गया – विशेष संबंध, विशेष गुण, विशेष लक्षण, देशभेद आदि के आधार पर। जैन सूत्रों में फूल वाले वृक्षों (उद्यान) तथा वृक्षों और लताओं का (आराम) उल्लेख आया है।

पौधों का वर्गीकरण

'ऋग्वेद' में औषधियों के चार भेद किए गए – फलिनी, अफला, अपुष्पा, पुष्पिणी। चरक ने वनस्पति, वानस्पत्य, औषधि और वीरुध – ये चार प्रकार दिए हैं। सुश्रुत ने भी ऐसा ही वर्गीकरण किया है। सुश्रुत ने वनस्पतियों और औषधियों को 37 गणों में विभक्त किया। चरक ने भोजन की दृष्टि से उनके बारह भेद बताए – 1. शूकधान्य वर्ग, 2. शमी धान्य वर्ग, 3. मांस वर्ग, 4. शाक वर्ग, 5. फल वर्ग, 6. हरित वर्ग, 7. मद्य वर्ग, 8. जल वर्ग, 9. गोरस, 10. इक्षु वर्ग, 11. कृतान्न, 12. आहार-योगि वर्ग।

जैन सूत्रों में 17 प्रकार के धान्य वर्णित हैं जिनमें ब्रीहि, यव, मसूर, गोधूम, मुद्ग (मूंग), माष, सण मुख्य हैं।

'बृहत्संहिता' के वृक्षायुर्वेद अध्याय में वृक्ष लगाने की विधियाँ दी हुई हैं।

बाग में कौन-सा वृक्ष पहले लगाया जाए, इसके लिए निर्देश हैं।

अरिष्टाशोक पुन्नागशिरीषाः सप्रियंगवः
मंगल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गहेषुवा। (श्लोक ३)।

(पहले बगीचे या घर के समीप शुभ करने वाले वृक्ष – नीम, अशोक, पुन्नग, शिरीष, प्रियंगु लगायें)।

वृक्ष कब लगायें इसका उल्लेख छठे श्लोक में है –

अजात शाखान शिखिरे जात शाखान हिमागमे।
वर्षागमे च सुस्कंधान यथा दिक्स्थान प्ररोपयेत्।।

(अजात शाखा वृक्षों को शिशिर ऋतु में, कलमी वृक्षों को हेमंत ऋतु में

तथा लंबी-लंबी शाखाओं वाले वृक्षों को वर्षा ऋतु में लगायें)।

घृत, खस, तिल, शहद, वायविंडग, दूध तथा गोबर – इन सबको साथ पीस कर गाछ के मूल से ऊपरी सिरे तक लेप करने का विधान बताया गया है।

"इसके बाद गाछ को एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान पर लगायें। लगाए गए वृक्ष को ग्रीष्म ऋतु में सुबह-शाम सीचें। वर्षा ऋतु में भूमि सूखने पर ही सिंचाई की जाए।"

"वृक्ष लगाते समय एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की दूरी 20 हाथ (यदि जगह कम हो तो 12 या 16 हाथ) रखें। पास-पास होने से वृक्षों में रोग लग जाते हैं।"

वृक्षों में रोग लगने के कारणों में अधिक शीत, अधिक वायु तथा अधिक धूप लगना गिनाए गए हैं। इससे वृक्षों के पत्ते पीले पड़ जाते हैं, अंकुर नहीं बढ़ते, डालियाँ सूख जाती हैं और रस टपकने लगता है।

रोगी वृक्षों की चिकित्सा के लिए विकारयुक्त अंग पर लेप डालने, फिर वायविडंग, घृत तथा पंक को मिलाकर वृक्ष पर लेप करने को कहा गया है। इसके बाद दूधमिश्रित जल से सीचें। यदि वृक्ष में फल नहीं लगता तो कुलथी, उड़द, मूँग, तिल, जौ – इन सबको दूध में उबालकर ठंडा करें और तब डालें।

यदि वृक्ष ठीक से नहीं बढ़ रहा हो तो भेड़ तथा बकरी के लेंडी के चूर्ण को तिल, सत्तू तथा गोमांस के साथ किसी पात्र में रात भर जल में फूलने दें और सुबह इस जल से वृक्ष को सींचें। बीज बोने के पूर्व उन्हें उपचारित करने का भी विधान है।

'बृहत्संहिता' में अशोक, कदली, जंबु, दाड़िम आदि की डाली काट कर (कांडरोपण) वृक्ष लगाने का उल्लेख है। कटी शाखाओं पर गोबर का लेप करना चाहिए।

वृक्षारोपण के लिए नरम भूमि, जिसमें तिल बोकर फूलने पर जोत दिया गया हो, उत्तम होती है।

□

अध्याय 7

जलवायु विज्ञान

नवपाषाणकालीन किसानों ने जलवायु से संबंधित ज्ञान का परिवर्धन-परिमार्जन शुरू किया जो लगातार परिशोधित होता रहा। हड़प्पा काल तक आते-आते तत्कालीन कृषकों को मौसम का पर्याप्त ज्ञान हो गया था। वे गेहूँ, जौ, चना, मटर, सरसों की बुआई जाड़े में, और खरीफ की फसलों, यथा – धान, तिल, उड़द की बुआई वर्षा ऋतु में करते थे।

वैदिक काल में जलवायु और मौसम संबंधी ज्ञान में अभिवृद्धि हुई। 'ऋग्वेद' के प्रथम मंडल में बादल बनने और वृष्टिपात होने के उल्लेख हैं जिसके अनुसार सूर्य की किरणें जल का हरण करके अंतरिक्ष में बादलों का निर्माण करती हैं जिससे वर्षा होती है। यही नहीं, जब उत्तम दुधारू गाय के पवित्र घृत-दूध का हवन किया जाता है तो वह सूर्य की किरणों के सहारे द्युलोक जाता है। तब उन्हीं किरणों के द्वारा पृथ्वी का पानी ऊपर आकाश में ले जाया जाता है जहाँ बादल बनते हैं। ये बादल द्यावा पृथ्वी के बीच में फैले और पानी से भरपूर रहते हैं। ये पानी बरसा कर अन्न उत्पन्न करते हैं।

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः
तुभ्यं पयो यत् पितरावनीतां राधः सुरेतस्तु रणे भुरण्यू।

वैदिक आर्य **सूर्य** को वर्षा का मूल स्रोत मानते थे। पृथ्वी के जल को सूर्य अपनी किरणों से भाप बनाकर उसे बादल में बदल देता था। बरसने के बाद बादल पानी बन जाते थे। वैदिककालीन यह विचार वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित था जिसका विस्तृत वर्णन 'पाराशर स्मृति', 'गर्ग संहिता', 'बृहत्संहिता' में प्राप्त होता है।

ऋग्वैदिक काल में इंद्र आर्यों का सबसे प्रभावशाली देवता था। इंद्र ही

प्रकृति की समस्त गतिविधियों का नियंता था – सूर्य को भी इंद्र के अधीन माना गया। इंद्र को विद्युत् भी माना गया। 'ऋग्वेद' में अनेक स्थानों पर इंद्र की महिमा गाई गई है। उसे वृत्र का संहारक बताया गया है। वृत्र पानी को बादलों में रोके रखता था। इंद्र ने वृत्र को मारा और सूर्य को आकाश में चमकाया। यही इंद्र बिजली रूपी वज्र से मेघ पर आघात करता है तब यह खंड-खंड होकर वर्षा जल के रूप में पृथ्वी पर गिरता है।

ऋग्वेद में यज्ञ से वृष्टि होने का वर्णन मिलता है।

वैदिक काल से ही ज्योतिष विद्या और मानसून का पर्याप्त ज्ञान था। समय की सही-सही गणना और भविष्य के लिए ग्रह राशियों और नक्षत्रों के आधार पर सटीक पूर्वानुमान ज्योतिष ज्ञान से ही संभव था।

'ऋग्वेद' के अंतर्गत खेती के छह मौसमों का उल्लेख प्राप्त होता है – अग्नि-राष्ट्र (पश्च शरद), इंद्र-इंद्राणी (पूर्व शरद), अग्नि-अग्नायी (जाड़ा), आश्विन्स-आश्विनी (बसंत), मरुत-रोदसी (गर्मी), वरुण-वरुणानी (वर्षा)।

'अथर्ववेद' तक आते-आते कृषि-मौसमों की अवधारणा अधिक स्पष्ट हो चली थी –

ग्रीष्मोहेमन्तः शिशिरो बसंतः शरद् वर्षाःस्वितेन दधात।
आ नो गोषु भजा प्रजायां निवात इदवः शरणेस्याम्।।

(ग्रीष्म, हेमंत, शिशिर, बसंत, शरद और वर्षा – ये छह ऋतुएँ हमें सदा सुखी रखें)।

वृष्टि के लिए अनुकूल वायु (मानसून) अपरिहार्य है। वर्षा और वायु का अन्योन्याश्रित संबंध है। वैदिक काल में यह मान्यता थी कि जब वायु भूमि तल को छूती चले तो वर्षा नहीं होती – यानी हवा को भूमि सतह से उठकर संचरण करना चाहिए।

भारत में मौसम संबंधी भविष्यवाणी **पंचांग** में की जाती है जो ज्योतिष गणना पर आधारित होती है। **पंचांग** एक प्रकार का खगोलीय आँकड़ों,

गणनाओं, दिनों, तिथियों, नक्षत्रों, मौसम की भविष्यवाणियों का वार्षिक कैलेंडर है। भारत के ग्रामीण जन प्राचीन काल से ही पंचांग का उपयोग करते रहे हैं। मौसम की भविष्यवाणी निम्नलिखित आधारों पर की जाती थी –

1. नक्षत्रों के संदर्भ में चंद्रमा और सूर्य की स्थिति।
2. चंद्रमा के नक्षत्र के आधार पर नाड़ी विचार।
3. नक्षत्रों के वाहन का विचार।
4. बादल के गर्भधारण और प्रसव का निरीक्षण।
5. वायुमंडलीय आर्द्रता, वायु वेग तथा इसकी दिशा पर प्रेक्षण।
6. पूर्णमासी के चंद्रमा का प्रेक्षण।
7. सूर्य के रूप-रंग के आधार पर।

नक्षत्रों के संदर्भ में चद्रंमा और सूर्य की स्थिति तथा नक्षत्र विशेष की विशेषता ही मौसम विषयक भविष्यवाणी का आधार है। पृथ्वी के चारों ओर चंद्रमा की परिक्रमा करने के मार्ग को 27 भागों में बाँटा गया है। यह विभाजन तारा समूहों पर – जिन्हें नक्षत्र कहते हैं – आधारित है। चूँकि परिक्रमा का मार्ग प्रायः वृत्ताकार है और वृत्त में 360 डिग्री होते हैं, अतः यदि इसे 12 से भाग दें तो 30 डिग्री का कोण बनता है जिसे **राशि** कहते हैं। इस तरह कुल 12 राशियाँ हैं –

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ तथा मीन।

यदि इसी वृत्त को 27 भागों में विभाजित करें तो प्रत्येक भाग 13 डिग्री 20 मिनट कोण का होगा। यही **नक्षत्र** हैं। इस तरह सवा दो नक्षत्रों की एक राशि होती है।

27 नक्षत्र हैं – अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्र,

स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा, रेवती।

27 नक्षत्रों को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है – लिंगानुसार तथा चंद्रमा और सूर्य के विशेष संबंधों के अनुसार।

इनमें से विशाखा, अनुराधा तथा ज्येष्ठा नपुंसक लिंग वाले हैं तथा आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा तथा स्वाति स्त्रीलिंग हैं। शेष 14 पुल्लिंग हैं। इसी तरह चंद्रमा से संबद्ध 14 नक्षत्र हैं और सूर्य से संबद्ध 13 नक्षत्र हैं।

प्राचीन काल में **वर्षा की भविष्यवाणी** का आयाम व्यापक था। ग्रह नक्षत्रों की ज्योतिषीय गणना के अलावा **बादल के गर्भधारण की** प्रकृति, उसकी प्रक्रिया, वायु वेग तथा उसकी दिशा, आपेक्षिक आर्द्रता और वायुमंडलीय दाब पर भी ध्यान दिया जाता था।

सूर्य द्वारा 27 नक्षत्रों के प्रक्रमण में 365 दिन लगते हैं, जबकि चंद्रमा द्वारा परिक्रमा काल 27 दिन का है। इस तरह सूर्य को एक नक्षत्र पार करने में 13-14 दिन लग जाते हैं जबकि चंद्रमा एक नक्षत्र को प्रतिदिन पार कर जाता है।

सूर्य और चंद्रमा के संचार की स्थिति चार प्रकार की हो सकती है –

1. सूर्य के नक्षत्रों पर जब सूर्य संचार करता है तब वर्षा न होकर वायु तेजी से चलती है।
2. चंद्रमा के नक्षत्रों पर जब चंद्रमा संचार करता है तब भी वर्षा न होकर वायु चलती है।
3. जब सूर्य के नक्षत्रों पर चंद्रमा संचार करता है तब निश्चित रूप से वर्षा होती है।
4. जब चंद्रमा के नक्षत्रों पर सूर्य संचार करता है तब भी निश्चित रूप से वर्षा होती है।

नाड़ी के अनुसार भी वर्षा का अनुमान लगाया जाता है। नाड़ियाँ सात हैं जिनका वर्षा पर प्रभाव इस प्रकार होगा –

1. चंडा – तेज धूप, वर्षाभाव
2. वात – धूप तथा वायु साथ-साथ
3. वन्हि – पछवा हवा (लू)
4. सौम्या – सामान्य वर्षा
5. नीरा – हल्की वर्षा
6. जल – भारी वर्षा
7. अमृता – बहुत भारी वर्षा, बाढ़

ऐसा भी माना गया है कि नक्षत्रों के वाहन के अनुसार वर्षा का अनुमान लगाया जा सकता है। वाहन के अनुसार वर्षा पर प्रभाव इस प्रकार है –

अश्व, शशक, खर तथा मेष वाहन होने पर वर्षाभाव, वराह पर पर्याप्त वर्षा, महिष पर भारी वर्षा तथा वृषभ पर सामान्य वर्षा का अनुमान है।

सूर्य चंद्र योगचक्र से भी वर्षा की भविष्यवाणी की जाती है। सूर्य के नक्षत्र प्रवेश के समय चंद्रमा त्रिकोण या केंद्र में हो और जलचर राशि में शुक्र दिखे या युत हो तो संपूर्ण मेघ जल देते हैं। मीन, कर्क, मकर राशि में हों तो अत्यंत जल, कुंभ, वृष, धनु राशि में हों तो आधा जल और वृश्चिक, तुला में हों तो स्वल्प जल तथा सिंहादि शेष राशियों में हों तो जल नहीं बरसता।

इसी तरह **ग्रहों का फल** भी है। यदि सूर्य से आगे मंगल हो तो अनावृष्टि, शुक्र हो तो वृष्टि, गुरु आगे हो तो गर्मी अधिक, और बुध हो तो वायु चलती है।

'अर्थशास्त्र' में भी वर्षा तथा उसकी माप का विस्तृत वर्णन मिलता है (देखें अध्याय 8)।

वाराहमिहिर कृत 'बृहत्संहिता' में उल्लेख है कि चंद्रमा के जिस नक्षत्र में बादल का गर्भधारण होता है, ठीक उसी नक्षत्र में 195 दिन बाद उसका वृष्टि के रूप में प्रसव होता है। यदि गर्भ शुक्ल पक्ष में हो तो प्रसव कृष्ण पक्ष में, यदि गर्भ दिन में हो तो प्रसव रात्रि में होगा।

बादल (मेघ)

ज्योतिष के अनुसार चार प्रकार के बादल होते हैं –

1. संवर्तक – अतिशय वृष्टि कराने वाले
2. आवर्तक – शुष्क या निर्जल
3. पुष्कर – अत्यल्प जल वाला
4. द्रोण – कृषि योग्य वृष्टिकारक

परवर्ती ग्रंथों में 6 प्रकार के मेघ बतलाए गए हैं –

अतिवायु, निर्वात, अत्युष्ण, शीतल, अत्यभ्र, निरभ्र।

'बृहत्संहिता' में उल्लेख है यदि सायंकाल बहुत बड़ा मेघ सूर्य बिंब को आच्छादित करे तो वृष्टि होगी।

'नारद संहिता' में सूर्य अथवा चंद्रमा के उदय-अस्त काल में विकृत वर्ण दिखाई दे तथा शहद के वर्ण-सा दिखे या वायु का वेग अधिक हो तो वृष्टि होगी।

वर्षा की माप

'बृहत्संहिता' के प्रवर्षणाध्याय में जल की माप का उल्लेख है। एक हाथ व्यास वाले और एक हाथ गहरे वर्तुलाकार कुंड में यदि पूरी तरह जल भरा हो तो यह 50 पल तुल्य जल होगा। 50 पल = 1 आढक, 4 आढक = 1 द्रोण। जिस वृष्टि से पृथ्वी की धूल बैठ जाए और तिनकों पर जल-कण दिखे तो उसे जल का **प्रमाण** कहना चाहिए।

कौटिल्य ने भी 'अर्थशास्त्र' में **द्रोण** का उल्लेख किया है।

जीव-जंतुओं की उछल-कूद से भी वर्षा की भविष्यवाणी की जाती थी, यथा –

'नारद संहिता' में उल्लेख है कि –

1. यदि मेंढक पश्चिम या दक्षिण दिशा में उछलने लगे तो शीघ्र वर्षा का योग।
2. यदि बिल्ली अपने पंजे से भूमि खोदे तो शीघ्र वर्षा, चींटी पर चींटी चढ़े और चींटी अंडे लेकर चले, सर्प वृक्ष पर चढ़े, तो वृष्टि का लक्षण।
3. यदि पतंगे आसमान में उड़ें तो तत्काल वर्षा। कौआ पानी में नहाकर पंख फड़फड़ाये तो वर्षा अश्वयंभावी। यदि कौआ देर तक रुक-रुक कर काँव-काँव करे तब भी वर्षा।
4. यदि मछलियाँ पानी में सतह से ऊपर की ओर उछलें तो भी वर्षा।

लोक प्रचलित कहावतें

ग्रामीण जनों (किसानों) के बीच खना, भड्डरी तथा घाघ की कहावतों में वर्षा, बादल, उपलवृष्टि विषयक जानकारी का काफी प्रचार है (इसके लिए तत्संबंधी अध्याय देखें)।

वस्तुतः लोकप्रचलित मौसम या जलवायु विषयक ज्ञान संस्कृत ग्रंथों से छनकर आया हुआ प्रतीत होता है। जनसामान्य जब संस्कृत से कट गया तो लोकभाषाओं में यही ज्ञान प्रचलित हुआ।

आज भी गाँव के लोग मौसम के बारे में इन कहावतों से मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं।

□

अध्याय 8

बुद्ध-जैन कालीन कृषि

मगध राज्य के उत्थान के साथ ही महात्मा बुद्ध का आविर्भाव हुआ था। वर्धमान महावीर महात्मा बुद्ध के समकालीन थे। बौद्ध साहित्य में 'जातकों' तथा जैन साहित्य में 'आगमों' का महत्वपूर्ण स्थान है।

'जातकों' में आई एक कथा से यह पता चलता है कि ब्राह्मण भी जंगलों को काटकर खेती करते, फसलों की निराई करते और खेतों की रखवाली करते थे। जंगलों के विनाश से बाढ़ें आने और खेती के नष्ट होने का भी उल्लेख मिलता है। कपिलवस्तु में बहने वाली नदी रोहिणी में बाँध बाँधकर नदी के जल से खेत सींचे जाते थे। एक अन्य कथा से स्पष्ट होता है कि किसान खेतों को जोतने, बोने, सींचने, बाड़ा बनाने, निराने, गोड़ने, काटने, माँड़ने में इतना व्यस्त रहते कि किसी आर्त तथा दीन के लिए कुटी बना देने तक का अवकाश न पाते।

अन्य स्रोतों से ज्ञात होता है कि बौद्धकाल में पशुओं का प्राधान्य था किंतु उनके लिए अलग से चरागाह नहीं थे। फसल काटने के बाद पशु खेतों में चरने के लिए छोड़ दिए जाते थे। फसल बो दी जाने पर सारे पशु ग्राम रक्षक के जिम्मे कर दिए जाते। वह पशुओं के झुंडों की पहचान के लिए उनमें चिह्न बनाता, मक्खियाँ भगाता, उनके घावों की रखवाली करता और रात में दंशकों को भगाने के लिए धुआँ करता। अच्छी जगहों में ले जाकर पशुओं को चराने, उन्हें पानी पिलाने तथा दुग्धादि की व्यवस्था करना उसी के जिम्मे होता था।

सारे खेतों को एकसाथ बोया जाता था। प्रत्येक व्यक्ति को अपने खेत के चारों ओर बाड़े नहीं बनाने पड़ते थे क्योंकि सबका एक संयुक्त बाड़ा होता था। गाँव के घरों के मालिकों के अनुसार खेतों के खंड होते थे और प्रत्येक परिवार अपने खंड की पैदावार का भागी होता था।

गाँव का मुखिया **'भोजक'** कहलाता था। 'जातकों' से यह भी पता चलता

है कि ब्राह्मणों के पास हजारों करीसे (बीघे) जमीन होती थी। काशी भारद्वाज नामक ब्राह्मण के पास 500 हलों की खेती थी जिसे वह मजदूरों से जुतवाता था। हल जोतने के समय अशनि, सीता, पर्जन्य, इंद्र भग के नाम यज्ञ किए जाते थे। फसल बोने-काटने के समय भी यज्ञ होते थे।

राजा खेत की उपज में से प्रतिवर्ष दशमांश लेता था। 'भोजक' या तो फसल की अटकल लगा देता था या राशि नाप ली जाती थी। कभी-कभी राजा उपज से 1/6–1/8 अंश लेता था। मगध में भूमि बेची नहीं जाती थी जबकि कोसल में भूमि बेची जा सकती थी।

साधारणतः वैश्य ही खेती करते थे किंतु खेती को नीच कार्य नहीं माना जाता था। यही कारण है कि ब्राह्मण भी खेती करते थे। यही नहीं गायें चराना, बकरी पालना, व्यापार करना, रथ हाँकना आदि भी ब्राह्मणों के लिए निषिद्ध न थे।

बड़े-बड़े खेतिहर मजदूर रखकर कार्य कराते। दास और दासियों को कार्य करते हुए असंतोष का अनुभव नहीं होता था।

इस तरह बौद्ध साहित्य से कृषि के चलताऊ स्वरूप का ही पता चल पाता है। इसके विपरीत जैन साहित्य में कृषि के विषय में अपेक्षतया अधिक विस्तृत जानकारी उपलब्ध होती है।

जैन आगम साहित्य में कृषि

आगम का अर्थ है सिद्धांत किंतु यह शब्द जैन साहित्य के लिए प्रयुक्त होता है। आगम को भी अंग, उपांग, छंद और सूत्र में विभाजित किया गया है। जैन ग्रंथों में 'परिशिष्ट पर्वन', 'भद्रबाहुचरित', 'आवश्यक सूत्र', 'भगवती सूत्र', 'कालिका पुराण' उल्लेखनीय हैं। 'कल्प सूत्र' की रचना भद्रबाहु द्वारा 400 ई.पू. की गई। जैन साहित्य में पुराण भी मिलते हैं — यथा रविषेणकृत (677 ई.) 'पद्मपुराण' जिनसेनकृत 'हरिवंश पुराण' (783 ई.) तथा 'महापुराण' (1000 ई.)। इनका समय छठी शताब्दी से लेकर सोलहवीं सदी तक, पूरे 1,000 वर्षों के अंतराल में है। यह साहित्य मागधी, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में है। डॉ. जगदीशचंद्र जैन ने* जैन आगम साहित्य के विषय में पर्याप्त अध्ययन किया है। उन्होंने 'बृहत् कल्प भाष्य',

'औपपातिक सूत्र', 'उपासक दशा', 'निशीथचूर्णी पीठिका', 'आवश्यकचूर्णी', 'आचारांग', 'उत्तराध्ययन टीका' को कृषिशास्त्र विषयक जानकारी के लिए महत्वपूर्ण ग्रंथ बतलाया है। गणित तथा ज्योतिष के लिए 'सूर्य प्रज्ञप्ति' तथा 'चंद्र प्रज्ञप्ति' नामक उपांग उपयोगी हैं। गणित की गणना बृहत्तर कलाओं में की जाती थी।

आयुर्वेद के लिए 'निशीथचूर्णी', 'आवश्यकचूर्णी', 'विपाक सूत्र', 'स्थानांग', 'बृहत्कल्प सूत्र', 'व्यवहारभाष्य' आदि स्रोत ग्रंथ हैं। महापुराण में मानव की आजीविका हेतु छह प्रमुख साधनों का उल्लेख है जिसमें असि (क्षत्रिय), मषि (लिपिक), कृषि, शिल्प, विद्या तथा वाणिज्य हैं। जैन पुराणों से ज्ञात होता है कि उस काल में जीविका के मुख्य आधार कृषि तथा पशुपालन थे।

कृषि

हम कृषि के अंतर्गत खेत, भूमियाँ, खेत की रखवाली, धान की खेती, भंडारण, धान्य के प्रकार, अन्य फसलें, अकाल, बाढ़, उद्यानकला, भूमि के उपयोग, पशुपालन, जंगल के विषय में संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं। जैन पुराणों में कृषक को कर्षक तथा हलवाहक को **कीनाश** कहा गया है। पर्वतीय तथा ऊँची-नीची भूमि को समतल कर, जंगलों को साफ कर तथा भूमि को खोदकर कृषि कार्य संपन्न किया जाता था।

महापुराण के अनुसार कृषक भोले-भाले, धर्मात्मा, वीतदोष तथा क्षुधा-तृष्णा आदि क्लेशों के सहिष्णु तथा तपस्वियों से बढ़कर होते थे।

खेत

खेत को **सेतु** तथा **केतु** — इन दो भागों में विभक्त किया गया था। रहट आदि से सींचे जाने वाले सेतु थे और जिन खेतों में वर्षा जल से धान्य उपजाया जाता था, वे केतु थे। महापुराण के अनुसार वर्षा समयानुकूल और पर्याप्त मात्रा में होती थी।

सिंचाई के साधन कई प्रकार के थे। कुँआ, सरोवर, तड़ाग, नहर, नदी, कृत्रिम साधन — अदेवमातृका कहलाते और वर्षा जल देवमातृका। सिंधु देश में नदी से,

द्रविड़ देश में तालाब से, उत्तरापथ में कुँओं से तथा डिंभर लोक में बाढ़ से सिंचाई होती थी। लाट देश में वर्षा जल का उपयोग किया जाता था।

मथुरा में खेती नहीं होती थी, वहाँ वाणिज्य होता था। कहीं-कहीं (कानन द्वीप में) नावों पर धान रोपते थे। कहीं किसान नाली (सारणी) बनाकर बारी-बारी से खेत सींचते थे। किसान कभी-कभी छिप कर खेतों में पानी लेते थे।

भूमियाँ

काली भूमि को **उद्घात** कहते थे। अधिक वर्षा होने पर इनमें पानी भरा रहता था। पथरीली भूमि **अनुद्घात** कहलाती थी। जंगलों को जलाकर भी खेती की जाती थी।

हल चलाने को स्फोट कर्म (फोडी कम्म) कहा जाता था। हल देवता के सम्मान में सीता यज्ञ किया जाता था। चंपानगरी के कुशल किसान सैकड़ों हलों से धरती जोतते थे और ईख, जौ, धान की खेती करते थे। कृषि में कुशल किसान **कृषि पराशर**** कहे जाते थे। हल के अलावा कुदाल का भी प्रयोग होता था।

खेत की रखवाली

किसानों की लड़कियाँ टिट्टि-टिट्टि चिल्लाकर बछड़ों तथा हिरणों को भगाती थीं। साँडों को भगाने के लिए लाठी का प्रयोग करती थीं। सुअरों को भगाने के लिए सींग का बाजा बजाया जाता था। 'महापुराण' में खेत के रक्षार्थ चञ्चा पुरुष रखे जाते थे, जिन्हें देखकर जानवर भाग जाते थे।

धान की खेती

धान की कई किस्में प्रचलित थीं — कलमशालि, रक्तशालि, महाशालि तथा गंधशालि।

धान के लिए क्यारियाँ बनाकर रोपण किया जाता था और खेत के चारों ओर बाड़ बनाते थे। धान को हंसिया से काटकर हाथ से मलकर घड़ों में भरकर रखते थे।

घड़ों को लीप-पोत कर, मोहर लगाकर कोठार (कोट्ठागार) में रख दिया जाता था। पर्वतीय प्रदेश में विशेष प्रकार के कोठार 'संबाध' बनाए जाते थे। घर के बाहर जंगलों में धान्य को सुरक्षित रखने के लिए पत्तियों तथा फूस से गोल रचना करके जमीन को गोबर से लीपते थे। फिर लंबाकार ढेर (राशि) लगाते थे। तब राख डालकर गोबर लीप देते थे, बाँस और फूस से भी ढकते थे। वर्षा ऋतु में अनाज को मिट्टी अथवा बाँस के बने कोठों, बाँस के बने मंच पर निर्मित कोठों अथवा घर के ऊपर बने कोठों में रखते और उनके द्वार को गोबर से ढककर ऊपर से मिट्टी लगा देते थे।

चावल को ओखली (उदूखल) में कूटा जाता था। पछोरने के सूप (सुप्पकत्तर) का प्रयोग अन्न साफ करने के लिए किया जाता था।

धान्य के प्रकार

जैन सूत्रों में 17 प्रकार के धान्य वर्णित हैं जिनमें ब्रीहि (चावल), यव (जौ), मसूर, गोधूम (गेहूँ), मुदग (मूँग), माष (उड़द), तिल, कोद्रव (कोदों), शालि (धान), कुलत्थ (कुल्थी), सण (सनई) मुख्य थे। अरहर, काला चना, अलसी, कुसुंब, तुअस, सरसों के भी नामों का उल्लेख है।

अन्य फसलें

चावल की तरह गन्ना (ऊच्छु) भी मुख्य फसल थी। मंदसौर (दशपुर) में इच्छुगृह का उल्लेख हुआ है। गन्ना की पेराई कोल्हुओं (महाजंत, कोल्लुक) से की जाती थी।

अकाल

वर्षा न होने पर चंद्रगुप्त मौर्य के काल में पटना में भयंकर अकाल पड़ा। इसी तरह दक्षिणापथ में 12 वर्षों का अकाल पड़ा। अकाल के समय लोगों को अपने बच्चों तक को बेचना पड़ता और दास वृत्ति स्वीकार करनी पड़ती।

बाढ़

पटना में आई बाढ़ का रोमांचक वर्णन मिलता है। राप्ती में बाढ़ आने से श्रावस्ती

नगरी बह गई थी। सिंधु देश में भी प्रायः बाढ़ें आती रहतीं।

उद्यान कला

जैन सूत्रों में **उज्जाण** (उद्यान) तथा **आराम** के उल्लेख हैं। उद्यान में फूल वाले वृक्ष लगाए जाते थे। लोग उद्यानों में अभिनय-नाटक करते। ये नगर के निकट होते। आराम में वृक्षों तथा लताओं के कुंज रहते जहाँ धनिक लोग तरुणियों के साथ क्रीडा करते।

फल वृक्षों में आम, जामुन, कैथ, फणस (कटहल), दाड़िम (अनार), कदलीफल, खजूर, नारियल के उल्लेख मिलते हैं। आरामों को नाली के पानी से सींचा जाता। रक्षित उद्यान **णिज्जाण** कहलाते थे। ये राजाओं के उद्यान होते थे। इनमें अशोक, पद्म, नाग, चंपक, चूत आदि लताओं, कनेर कुब्जक (सफेद गुलाब), यूथिका (जूही), मल्लिका, चंपक, कुंद फूल उगाए जाते।

एक हजार आम के वृक्षों का बाग सहस्राम्र वन कहलाता था। जंगली फलों को गाड़ियों में भरकर नगरों में बेचा जाता। कच्चे फलों को पकाने के लिए चार प्रकार के उपायों का प्रयोग होता था।

(i) **ईंधन पर्यायाम** : आम को पकाने के लिए घास-फूस या भूसे के अंदर रखकर गर्मी पहुँचाई जाती थी।

(ii) **धूम पर्यायाम** : किसी गड्ढे में कंडे की आग जलाकर उसके चारों ओर कच्चे फल रख दिए जाते थे। गड्ढे में बने छेदों से धुँआ फलों तक पहुँचता था।

(iii) **गंध पर्यायाम** : ककड़ी, खीरा को पके फलों के साथ रख दिया जाता तो वे गंध से पक जाते थे।

(iv) **वृक्ष पर्यायाम** : वृक्षों में ही फलों को पकने दिया जाता था।

जंगल

जंगल के लिए वन, कानन, अटवी, अरण्य जैसे पर्याय मिलते हैं। राजगृह के पास अठारह योजन लंबी महाअटवी थी जहाँ पर चोर रहने लगे थे। इन जंगलों

में तरह-तरह के वृक्ष, तृण तथा फलदार वृक्ष पाए जाते थे। वृक्षों की लकड़ी जलाने तथा वाहन तैयार करने के लिए प्रयुक्त की जाती थी। अंगार कर्म द्वारा लकड़ी से कोयला बनाया जाता, ईंटें पकाई जाती थीं। लकड़ी, पत्ते, तृण को एकत्र करने वाले कट्टहारक, पत्रहारक, तृणहारक कहलाते थे। जंगलों में शिकार (मृगया) भी होता था। मृगों के वध का उल्लेख हुआ है।

जमीन के उपयोग

यूँ तो भूमि का उपयोग खेती के लिए किया जाता था किंतु बंजर भूमि में मुर्दे गाड़े या जलाए जाते थे। कुछ भूमि पर वन या जंगल थे। कुछ में खानें (आकर) थीं। कुछ में चरागाह थे। प्रायः नदी तट खेती के काम नहीं आते थे।

पशुपालन

गाय, बैल, भैंस तथा भेड़ें पशुधन कहलाते थे। एक व्रज (झुंड) में दस हजार तक गायें होती थीं। आभीर गाय-भैंस पालते थे। इनके गाँव अलग होते थे। ग्वाले ध्वजा लेकर आगे-आगे चलते और गाएं उनके पीछे चलती थीं। गायों को अलग-अलग रखने के लिए गृहपति काली, सफेद, लाल, चितकबरी गायों को पृथक्-पृथक् ग्वानलों के सुपुर्द करते थे। दूध दुहने का काम महिलाएँ करती थीं। ऊंटिन, भेड़, बकरी का भी दूध काम में लाया जाता था।

भेड़ की ऊन तथा ऊंटों के बाल से कंबल बनते जिन्हें जैन साधु ओढ़ने के काम में लाते थे। मेढ़ों को अन्न खिलाकर मोटा करते और फिर मार कर खाते थे।

पशुओं की चिकित्सा भी की जाती थी।

---

* 1. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज : डॉ. जगदीश चंद्र जैन, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी-1, 1965

2. जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन : डॉ. देवी प्रसाद मिश्र, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, 1988

** बंगाल में कृषि के आचार्य पराशर हुए हैं जिनका काल 1000 ई. है (देखें अध्याय 10)।

□

अध्याय 9

कौटिल्यकालीन कृषि

कौटिल्य यानी विष्णुगुप्त अथवा चाणक्य सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य का मंत्री था। उसका लिखा बहु-विख्यात ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' (300 ई.पू.) है। इस ग्रंथ का तथा विष्णुगुप्त दोनों का नाम कामंदक के प्रसिद्ध ग्रंथ 'नीतिसार', दंडी विरचित दशकुमार चरित, पंचतंत्र, वराहमिहिर कृत 'बृहत्संहिता' आदि ग्रंथों में मिलता है। किंतु यह ग्रंथ बहुत काल तक लुप्त रहा। अकस्मात् इसकी एक प्रति मैसूर राज्य की ओरियंटल लाइब्रेरी में मिली जिसका प्रथम संपादन शाम शास्त्री द्वारा 1909 ई. में हुआ। 1915 ई. में इसका अंग्रेजी अनुवाद भी उन्हीं के द्वारा किया गया। तब विद्वानों का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ। इसके तीन हिंदी अनुवाद भी हुए। पहला 1923 ई. में प्राणनाथ विद्यालंकार द्वारा, दूसरा 1940 ई. में पंडित गंगा प्रसाद शास्त्री (महाभारत कार्यालय, दिल्ली संवत 1997) द्वारा और तीसरा 1927 ई. में प्रोफेसर उदयवीर शास्त्री द्वारा (मेहरचंद्र लक्ष्मणदास, लाहौर सं. 1982)।

इस ग्रंथ के विषय में इतिहासवेत्ता कीथ का मत है कि यह दक्षिण भारत के किसी पंडित द्वारा तीसरी शताब्दी में लिखा गया। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस ग्रंथ में कहीं भी चंद्रगुप्त, मौर्य साम्राज्य या नंदवंश का उल्लेख नहीं पाया जाता। इस ग्रंथ में पूर्ववर्ती अनेक आचार्यों का उल्लेख है — जैसे पराशर, कात्यायन आदि का। साथ-साथ कौटिल्य मत भी दिया गया है जिससे यही पुष्टि होती है कि यह ग्रंथ कई आचार्यों के मतों का संग्रह है। 'अर्थशास्त्र' में 15 अधिकरण तथा 180 प्रकरण हैं। श्लोकों की संख्या 4,000 बताई गई है। जो भी हो, इसमें द्वितीय अधिकरण (अध्यक्ष प्रचार) के अंतर्गत कोषागाराध्यक्ष (प्रकरण 33), कुप्याध्यक्ष (प्रकरण 35), सीताध्यक्ष (चौबीसवाँ अध्याय प्रकरण 41), सुराध्यक्ष (प्रकरण 42), गोऽध्यक्ष (प्रकरण 46), अश्वाध्यक्ष (प्रकरण 47), हस्त्यध्यक्ष (प्रकरण 48) के अलावा भूमि छिद्र विधान (प्रकरण 20), दुर्ग विधान (प्रकरण 21) में कृषि से संबद्ध उपयोगी सामग्री मिलती है। इसके अतिरिक्त षाड्गुण्य नामक सप्तम अधिकरण में अनवसित

संधि (प्रकरण 10) भी उपयोगी है।

वार्ता

चाणक्य ने कृषि, पशुपालन तथा वाणिज्य इन तीनों को **वार्ता** कहा है —

कृषि पाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता (1/4/1)

स्पष्ट है कि कृषि विज्ञान विषयक विविध जानकारी 'वार्ता' में सन्निहित है। कौटिल्य की शब्दावली में कृषि कर्म का नाम **सीता** है। हल के फाल से बने हल चिह्न को भी **सीता** कहा गया है। पशुपालन और कृषि के लिए 'मनुस्मृति' में भी **सीता** शब्द आया है। अर्थशास्त्र के अनुसार कृषि विभाग के प्रबंधकर्त्ता को **सीताध्यक्ष** (2.14.1) कहा गया है जिसे कृषि शास्त्र, शुल्ब शास्त्र (जिसमें भूमि आदि के पहचानने और नापने आदि का निरूपण हो — गुल्म शास्त्र पाठांतर के रूप में) तथा वृक्षायुर्वेद (वृक्ष आदि के संबंध में हर जगह का ज्ञान) को अच्छी तरह जानना चाहिए अथवा इन सब विधाओं को जानने वाले पुरुषों को अपना सहायक बनाना चाहिए और ठीक समय पर सब तरह के अन्न, फल, फूल, शाक, कंद, मूल, वालिक्य (कद्दू, पेठा आदि), क्षौम (सन, जूट) और कपास आदि के बीजों का संग्रह करना चाहिए।

सीताध्यक्षः कृषितंत्र शुल्ब वृक्षायुर्वेदज्ञस्तज्ज्ञसखो वा सर्वधान्य पुष्प फलशाककंद मूलवालिक्यक्षौमकार्पास बीजानि यथाकालं गृह्णीयात् (1)

(सीताध्यक्ष का कर्तव्य था कि वह बीजों को उनके ठीक समय पर बहुत बार हलों से जोती हुई भूमि में दास, कर्मकर और कार्य करके दंड को भुगताने वाले अपराधी पुरुषों के द्वारा बुआए। खेत जोतने के हल या अन्य साधन और बैल आदि से इन कर्मचारियों का कोई वास्ता नहीं रहता था — यानी कृषि कार्य के समय ही कृषि साधन उपलब्ध कराये जायें, उनकी रक्षा आदि का प्रबंध सीताध्यक्ष दूसरों से कराए)।

यही नहीं, आगे भी कहा गया है कि —

"कृषि कर्म के लिए उपयुक्त शिल्पी (कारू), लुहार, बढ़ई, खोदने वाले, रस्सी

बटने वाले भी होने चाहिए। यदि कारू आदि द्वारा किसी कार्य को ठीक से न करने से हानि पहुँचे तो उससे इस हानि की क्षतिपूर्ति करने का विधान था"।

भूमि प्रकार

'अर्थशास्त्र' के अनुसार **दो** प्रकार की भूमियाँ थीं — **कृष्य** तथा **अकृष्य**। कृष्य भूमियों का वर्गीकरण उनमें उगाई जाने वाली फसलों के अनुसार किया गया है। अकृष्य भूमियों को पुनः चरागाह तथा जंगल में विभाजित किया गया है।

"जल के किनारे का स्थान (फेनाघात) पेठा, कद्दू, ककड़ी, तरबूज आदि (बल्लीफल) बोने के लिए उपयुक्त होता है। पीपल, अंगूर तथा ईख आदि बोने के लिए वह प्रदेश अच्छा होता है जहाँ पर नदी का जल एक बार घूम गया हो (परीवाहांत), शाक, मूल आदि बोने के लिए कुएँ के पास का स्थान (कूपपर्यंत), जई आदि हरे गौत बोने के लिए झील, तालाब आदि के किनारे के गीले प्रदेश (हरिणपर्यंत) तथा काटे जाने वाले गंध, भैषज्य (औषधि, धनिया, सौंफ), उशीर (खस), हवेर (नेत्रवाला), पिंडालुक (कचालू या शकरकंदी) आदि चीजों को बोने के लिए वे खेत उपयुक्त हैं जिनके बीच में तालाब बने हों (पाल्योल्यवान)।

इस तरह फेनाघात, परीवाहांत, कूपपर्यंत, हरिणपर्यंत, तथा पाल्योल्यवान — ये पाँच प्रकार की भूमियाँ थीं। ये भूमियाँ निश्चित रूप से सिंचाई के साधन की उपस्थिति के अनुसार वर्गीकृत थीं। सिंचाई के लिए कई प्रकार के साधन थे — नदी का जल, कुएँ का जल, झील का जल तथा तालाब का जल। तदनुसार विविध प्रकार की फसलें उगाई जाती थीं जिनमें ईख, शाकभाजी, कंद से लेकर मसाले, अंगूर, आदि मुख्य थे।

(फेनाघातो वल्लीफलानां परीवाहान्ताः मृट्रीकेक्षूणां कूपपर्यंताः
शाकमूलानां हरिणीपर्यंताः हरितकानां पाल्योलवानां गंध
भैषज्योशीर ह्रीबेरापिंडालुकादीनाम् (2.24.31)।

"जिस भूमि में कृषि न हो सके (अकृष्य) वहाँ पर पशुओं के लिए चरागाह आदि बनवा दिए जाएँ तथा स्थावर वृक्षलता आदि जंगम मृग आदि को जहाँ अभयदान किया हुआ हो, ऐसे एक गव्यूतिमात्र (चार कोस की) दूरी तक फैले हुए,

वेदाध्ययन और सोमयाग आदि के लिए अत्यंत उचित जंगलों को वेदाध्यायी ब्राह्मणों के लिए दे दें और इसी प्रकार के तपोवनों को तपस्वियों को दे दें।"

(अकृष्यायां भूमौ पशुभ्यो विवीतानि प्रयच्छेत् (1)

प्रदिष्टाभयस्थावरजंगमानि च ब्राह्मणेभ्यो ब्रह्मसोमारण्यानि तपोवनानि च तपस्विभ्यो गोरुतपराणि प्रयच्छेत् — 2/2/1-21 (भूमिछिद्रविधान)

स्पष्ट है कि उपजाऊ भूमि का उपयोग कृषि के लिए और अनुपजाऊ या व्यर्थ भूमि का उपयोग जानवरों के लिए चरागाह के रूप में अथवा तपस्वियों के लिए तपोवन के रूप में किया जाता था।

जंगल कई प्रकार के होते थे — चिड़ियाघर (अभयारण्य, मृगवन), द्रव्य वन, हस्ति वन।

"शिकार के लिए चार कोस तक फैले एक द्वार वाले, चारों ओर खोदी हुई खाई से सुरक्षित, स्वादु, फल, लता कुंज, फूलों के गुच्छे तथा काँटे-रहित वृक्षों से और थोड़े गहरे जलाशयों से युक्त, मानवों से परिचित मृग आदि तथा अन्य जंगली जानवरों से युक्त, कटे हुए नख और डाढ़ों वाले व्याघ्रों से युक्त, शिकार योग्य हाथी, हथिनी और इनके बच्चों से युक्त मृगवन को राजा के विहार के लिए (शिकार खेलने के लिए) तैयार कराए (3)।

"इस वन के समीप ही योग्य भूमि होने पर एक और मृगवन तैयार कराया जाए। उसमें सब देशों के जानवर लाकर रखे जाएँ (4)।

"अपने जनपद के सीमा प्रांत में अटवीपाल पुरुषों की देख-रेख में ही एक हस्तिवन (हाथियों के जंगल) की स्थापना करायें (7)"।

जंगलों के प्रकार

कुप्याध्यक्ष (2.17) प्रकरण में जंगल में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं (कुप्य) यथा — लकड़ी, बाँस, छाल आदि की देखभाल के लिए नियुक्त अधिकारी के कर्तव्यों का वर्णन है।

"कुप्याध्यक्ष को चाहिए कि वह भिन्न-भिन्न स्थानों में वृक्षों और जंगलों (द्रव्यवन) की रक्षा करने वाले पुरुषों के द्वारा कुप्य अर्थात् बढ़िया लकड़ी मँगवाए। (1)

इसके आगे कुप्यवर्ग का विवरण दिया गया है। कुप्यवर्ग में वृक्षों के अनेक भेदाभेद हैं। उनमें सबसे प्रथम सार दारू वर्ग का वर्णन हुआ है —

शाक (सागौन), तिनिश (तुन), धन्वन (पीपल), अर्जुन, मधूक (महुआ), तिलक (तालमखाना), साल, शिंशपा (सीसम), अरिमेद, राजादन (खिरनी), शिरीष (सिरस), खदिर (खैर), सरल (देवदार), ताल (ताड़), सर्ज (साल), अश्वकर्ण (साल),सोमवल्क (सफेद खैर), कश (कीकर), आम, पियक (कदंब), धव (गूलर) — इन सबकी लकड़ी बहुत बढ़िया और मजबूत होती है।

इसके बाद बाँस तथा लताओं का उल्लेख हुआ है। उटज, चिमिय, चाप, वेणु, वंश, सातीन, कंटक, भाल्लूक — ये बाँसों के भेद हैं। वेत्र (बेंत), शीक वल्ली, वाशी, श्याम लता, नागलता — ये सब लताओं के भेद हैं।

फिर छाल वाले तथा अन्य उपयोगी वृक्षों का उल्लेख है — मालती (चमेली), मूर्वा, अर्क (मदार), शण (सनई), अतसी (अलसी), आदि वल्कलवर्ग। मुंज, बल्वज, रज्जु बनाने के काम आने वाले, ताली (ताड़), ताल (ताड़), भूर्ज, भोजपत्र कागज बनाने के काम आने वाले, किंशुक (ढाक), कुसुंभ, कुंकुम (केसर) वस्त्र रँगने के काम आने वाले वृक्ष हैं।

कंद (सूरन), मूल (खस आदि), फल (आँवला आदि) को औषधि वर्ग कहा गया है।

इस प्रकरण में वनोपजों का भी उल्लेख मिलता है।

वर्षा

वर्षा की मात्रा द्रोण में व्यक्त की गई है। यह फसलों के लिए आवश्यकतानुसार 16 द्रोण से लेकर 24 द्रोण* तक होती थी। इसका विभाजन इस प्रकार होता था (2.24-6-7)।

जांगल (मरुप्राय) — 16 द्रोण
तथा अनूप (जलप्राय) — 24 द्रोण*

देश भेद के अनुसार किन-किन देशों में कितनी-कितनी वर्षा अच्छी फसल के लिए पर्याप्त है, इसका भी उल्लेख है —
अश्मक देशों (महाराष्ट्र) में 13½ द्रोण

मालव प्रांत (अवंती) में 23 द्रोण

अपरांत (राजपूताना) तथा नहर वाले प्रदेशों से समय-समय पर होने वाली वर्षा पर्याप्त।

यह भी बताया गया है कि वर्ष में भिन्न-भिन्न देशों में होने वाली वर्षा एक-समान नहीं होनी चाहिए। 1/3 वर्षा श्रावण तथा कार्तिक मास में होनी चाहिए।

शेष 2/3 वर्षा भादों और क्वार में होनी चाहिए — अर्थात् श्रावण से क्वार मास में ही वर्षा हो जाती है।

अच्छी वर्षा के लक्षण हैं — तीन मेघ लगातार सात-सात दिन तक बरसते रहें और अस्सी बार बूँद-बूँद करके बारिश हो तथा साठ बार धूप से युक्त वृष्टि हो तो यह वृष्टि उचित और अत्यंत लाभदायक होती है। इस तरह 365 दिनों में 161 दिन वर्षा के होने चाहिएं। बीच-बीच में आकाश खुला रहने यानी धूप होने से तीन बार खेत जोतने के लिए अवसर मिलने से अच्छी फसल होती है।

वर्षा की न्यून या अधिक मात्रा के अनुसार ही अन्नों के बीज बोने का उल्लेख है। वर्षा के शुरु होते ही (पूर्ववाप) शाली (साठी धान), व्रीहि (चावल), कोदों, तिल, कंगली और लोबिया बो देना चाहिए। मूँग, उड़द और छीमी को बीच में बोना चाहिए।
(शालि व्रीहि कोद्रवतिल प्रियंगुदारकवराकाः पूर्ववापाः 2/24/16)

कुसुंभ, मसूर, कुल्थी, जौ, गेहूँ, मटर, अलसी, सरसों को वर्षा के अंत में बोया जाए (पश्चाद्वाप)। जल की न्यूनता या अधिकता के अनुसार ही हेमंत ऋतु और ग्रीष्म ऋतु के अनाज बोएँ।

* द्रोण = 1 हाथ मुँह वाले कुंड में एकत्र जल

तात्पर्य यह है कि ऋतु के अनुसार फसलें उगाई जाएँ। वस्तुतः वर्षा आधारित यह विभाजन खरीफ और रबी फसलों जैसा है।

सिंचाई

वर्षा के अतिरिक्त खेतों को सींचने के अन्य साधन भी उपलब्ध थे — 1. अपने हाथ से बनाए गए पोखर या तालाब से — हाथ से पानी ढोकर या कंधों पर ढोकर या स्रोत यंत्र (चर्खी) से सिंचाई की जाती थी।

2. नदी, सर, (झील), तटाक (तालाब) तथा कूप से भी (रहट) पानी लिया जाता था।

राजा को जल का जो कर देना होता था वह उपर्युक्त साधनों के ही अनुसार उपज का 1/3 से 1/5 अंश होता था।

फसलें

वर्षा के अनुसार तथा भूमि के अनुसार फसलों के बोए जाने के निर्देश हुए हैं। कुछ फसलें उत्तम (ज्येष्ठ) मानी जाती थीं, कुछ मध्यम। उदाहरणार्थ — धान, गेहूँ आदि उत्तम फसलें थीं। कदली (केला) को मध्यम तथा ईख को सबसे ओछी फसल माना जाता था क्योंकि ईख के बोने में बहुत श्रम लगता है और बाद में तमाम व्याधियाँ आती रहती हैं।

जल की मात्रा और कर्म (श्रम) के अनुसार फसलें तीन प्रकार की बताई गई हैं —

1. केदार (जो वर्षा में बोई जाएँ)
2. हैमन (जो हेमंत या जाड़े में बोई जाएँ)
3. ग्रैष्मिक (जो गर्मी में बोई जाएँ)।

विभिन्न फसलों के लिए उपयुक्त प्रदेशों (भूमियों) का वर्णन भूमि प्रकार के अंतर्गत किया जा चुका है।

दलदल में उत्पन्न होने वाली औषधियों को उनके अनुकूल भूमि में या फिर

गमलों (स्थल्याः) में उगाना चाहिए।

अन्न संग्रह

फसलों से अन्न निकाल लेने पर उसे सुखाया तथा भंडारित किया जाता था। बोए जाने वाले बीज का **संस्कार** आवश्यक था।

धान्य (सीता) रखने के संग्रह स्थान (प्रकार) को ऊँची जगह पर बनाना चाहिए। ऊँचे ढेर जैसे या फिर बलभी (ढेर) जैसा रूप देना चाहिए। एक स्थान पर पास-पास बहुत-सी बलभियाँ न बनाई जायें। पुआल तक का संग्रह किया जाए। (2:24:44)

सीताध्यक्ष का कार्य था कि प्रत्येक जाति के धान्य को कोषागार में रखे। ईख के बने पदार्थों के संग्रहण की विधियाँ भी वर्णित हैं। इतना ही नहीं, अम्ल वर्ग, दधि वर्ग, कटुक वर्ग (मसाले), शाक वर्ग के भी संरक्षण का उल्लेख है। बार-बार कूटा, साफ किया, पीसा, भाड़ में भूना, गीला, सुखाया या पकाकर तैयार किया गया जितना भी धान्य हो उसको तुलवा कर रखने का सीताध्यक्ष के लिए निर्देश है। इतना ही नहीं, विभिन्न धान्यों को कूटने, पीसने, पेरने से जो क्षति होती है, उसकी मात्रा का भी उल्लेख है। धान की कुटाई से प्राप्त विविध श्रेणियों के चावल का भी उल्लेख है। राजा के लिए सर्वोत्तम श्रेणी का चावल तैयार किया जाता था।

'अर्थशास्त्र' में बोए जाने के पूर्व बीजों की संस्कार विधियों का अति विस्तृत वर्णन मिलता है (2.24. 33-36)। ये हैं —

1. **ओस और धूप :** धान के बीजों को रात के समय ओस में और दिन के समय धूप में सात दिन तक रखा जाए।

मूँग, उड़द, आदि के बीज को इसी प्रकार तीन दिन रात या पाँच दिन रात तक ओस और धूप में रखा जाए।

2. **शहद, घी, चर्बी, गोबर :** कांड बीज अर्थात् ईख आदि के बीज को कटी हुई जगह में शहद, घी या सुअर की चर्बी को गोबर के साथ मिलाकर लगायें।

सूरण आदि कंदों के कटे स्थानों पर गोबर मिली शहद या घी से लेप करें।

अस्थि बीजों (कपास आदि) को गोबर से लपेट कर रखा जाए और फिर बोया जाए।

आम, कटहल आदि के वृक्षों के बीजों को एक गड्ढे में डाल कर कुछ गरमी दी जाए, फिर ठीक समय पर उनको गाय की हड्डी और गोबर के साथ मिला कर रखा जाए।

हर बीज के बोने के समय सुवर्ण जल से भीगी हुई पहली बीज की मुट्ठी को बोया जाए और मंत्र पढ़ा जाए।

खादें

'अर्थशास्त्र' में तीन प्रकार की खादों का उल्लेख है — गोस्थि, गोशकृद (गोबर) तथा अशुष्क कटुमत्स्य।

जड़ों के निकट के गर्तों को जला देना चाहिए और उनमें हड्डी और गोबर की खाद समय-समय पर देनी चाहिए। अंकुर निकलने पर ताजी छोटी-छोटी मछलियों की खाद और सैंढ (सेहुड) के दूध से सींचना चाहिए।

(शाखिनां गर्तदाहो गोस्थिशकृदिभः काले दौहृदं च।
प्ररूढांश्चाशुष्ककटुमत्स्यांश्चस्नुहि क्षीरेण पाययेत
— 2.24/34)

मछली के धावन का उल्लेख घाघ, खना के विवरणों में भी मिलता है।

कीटनाशी

कपास के बीज और साँप की केंचुली को मिलाकर जलाने से जहाँ तक धुँआ जाता है वहाँ तक कोई साँप नहीं ठहरता।

पशुपालन

'अर्थशास्त्र' में गोपशु, अश्व और हस्ति के विषय में प्रचुर सामग्री दी हुई है।

'अर्थशास्त्र' के उनतीसवें प्रकरण में गोविभाग के सबसे बड़े कर्मचारी का नाम

गोअध्यक्ष दिया गया है। इसके नीचे वेतनभोगी तथा अन्य अंशकालिक कार्यकर्ता होते थे।

गोपशुओं में गायें, बैल, भैंसे तथा भैंसा सम्मिलित थे। गाय तथा भैंस में वत्सिका (बछिया), वत्सतरी (बड़ी बछिया), प्रष्ठौही (पहलौठी), गर्भिणी, धेनु (दूध देने वाली), अप्रजाता (बच्चे-रहित) तथा बंध्या विभाग गिनाए गए हैं। इसी तरह बैलों के छह प्रकार — वत्स, वत्सतर, दम्य, वहिन, वृष तथा उक्षाण (साँड़) और भैंसे के चार प्रकार — युगवाहन, शकटवह, वृषभ, और सून बताए गए हैं।

सौ-सौ गायों के समूह पर एक गोपालक, पिंडारक, दोहक, मन्यक और लुब्धक — ये पाँच सेवक रखे जाते थे। इन सौ गायों के समूह में बूढ़ी दूध देने वाली, गर्भिणी, पठोरी और बछिया — ये पाँच प्रकार बराबर-बराबर संख्या में होती थीं। पशुओं का विवरण रखने की प्रथा थी। इसे व्रज पर्यग्र कहा गया है। पशुओं को लौहचिन्हों से अंकित करने की प्रथा थी जिससे खो जाने पर ढूँढ़ने में आसानी हो। जो गायें बाहर से राजकीय गोशाला में आती थीं उन्हें अंकित कर दिया जाता था। रजिस्टर में गायों का अंकचिन्ह, वर्ण, सींग की बनावट आदि लक्षण अंकित रहते थे।

गोपालकों को आदेश था कि बाल, वृद्ध तथा व्याधिग्रस्त गायों की देख-रेख करें। चरते समय गायों की रक्षा के लिए शिकारी कुत्ते रखे जायें और विपदा संकेत के लिए गायों के गलों में घंटियाँ बँधी रहें।

गाय को मारने या मरवाने के लिए मृत्युदंड दिया जाता था।

अश्वपालन

अश्वाध्यक्ष को अश्वों के कुल, वय, वर्ण, चिह्न, वर्ग और आगम का विवरण रखना होता था।

अश्वशाला में रहने वाले घोड़े खरीद कर, युद्ध में पकड़ कर लाये गये, या वहाँ पैदा हुए होते थे।

अश्वशाला की लंबाई, चौड़ाई का भी उल्लेख हुआ है। यह घोड़ों की लंबाई की दुगुनी चौड़ी, चार द्वारों से युक्त, चिकने फर्श वाली तथा मूत्रोत्सर्ग के लिए

विशेष प्रबंध से युक्त होती थी। घोड़ी, किशोर घोड़े तथा वृष के लिए अलग-अलग स्थान होते थे।

युद्धोपयोगी घोड़े काबुल, सिंध, पंजाब या अरब के उत्तम माने गए हैं। बलख, राजपूताना आदि के मध्यम श्रेणी के तथा शेष स्थानों के अधम श्रेणी के बताए गए हैं। युद्धकर्म के घोड़ों को प्रशिक्षण दिया जाता था। घोड़े की सेवा करने के लिए चिकित्सक, सईस, घास डालने वाला, अन्न पकाने वाला, खुरहरा करने वाला, जंगली जड़ी-बूटियाँ पहचानने वाला होते थे।

घोड़ों के भोजन का भी उल्लेख है। बच्चा जनने वाली घोड़ी को घी, सत्तू, तैल आदि पिलाने की संस्तुति की गई है।

उत्तम घोड़ों को भोजन में घास, चारे के अलावा, अन्न, घी, तेल, लवण, मांस, क्षार, सुरा, दूध आदि दिया जाता था। उनके नाक में तेल भी डाला जाता था।

हस्तिपालन

हस्तिपालन विभाग का अध्यक्ष **हस्त्यध्यक्ष** कहलाता था। उसका कर्त्तव्य था कि वह हाथियों, हथिनियों और उनके बच्चों के रहने, खाने, बाँधने तथा बीमार पड़ने पर उनकी चिकित्सा का ध्यान रखे। जो गजशालाएँ बनाई जाएँ उनमें हथिनी का स्थान अलग हो। गजशाला का फर्श चौकोर, चिकना और मलमूत्र को साफ करने की व्यवस्था से युक्त हो।

हाथियों को दो बार नहलाने, पूर्वाह्न में व्यायाम कराने और अपराह्न में भोजन कराने का आदेश था।

पशुओं का आहार

नथे हुए बैलों तथा रथ आदि में जोते जाने वाले घोड़ों के भोजन में घास, भूसा, खली, दाना, नमक, तेल, माँस, दही, दूध, सुरा, गुड़, सोंठ आदि रहते थे। इनकी मात्रा भी तय थी। खच्चरों, गायों और गधों को इनकी 3/4 मात्रा दी जाती थी। भैंसों और ऊँटों को दुगना भोजन दिया जाता था। दूध देने वाली गायों और खेत जोतने वाले बैलों को दूध के अनुपात, खेत में परिश्रम के अनुपात से भोजन मिलता

था। यह भी निश्चित था कि सभी पशुओं को चारा तथा पानी भरपेट दिया जाए।

कौटिल्य ने झुंडों के लिए सांडों तथा मेढ़ों की संख्या भी निश्चित की थी।

दूध की शुद्धता पर बल था। उदाहरणार्थ, गाय के एक सेर दूध में से एक छटांक घी निकलना चाहिए और भैंस के उतने ही दूध से 1 1/5 छटांक, भेड़ और बकरी के एक सेर दूध से 1½ छटांक निकलना चाहिए। दूध और घी की मात्रा भूमि, तृण और जल के अनुसार बढ़नी चाहिए।

'अर्थशास्त्र' में पूरे सात हाथ ऊँचे हाथी के भोजन की मात्रा तथा उसमें सम्मिलित किए जाने वाले पदार्थों की सूची भी दी गई है।

कर्मभेद के अनुसार हाथी चार प्रकार के बताए गए हैं – दम्य (पालतू), सांनाह्य (सेना के योग्य), औपवाह्य (सवारी के योग्य) तथा व्याल (दुष्ट)। इनके भी उपभेद बताए गए हैं।

हाथी की सेवा करने वालों में चिकित्सक, शिक्षक, आरोहक, मालिश करने वाले, कुटीर रक्षक आदि कई कर्मी गिनाए गए हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अर्थशास्त्र' में कृषि के सभी पक्षों का यथातथ्य वर्णन मिलता है। 300 ई. पू. का ऐसा विवरण सचमुच रोचक तथा विचारणीय है।

संदर्भ : 1. A.B. Keith, History of Sanskrit Literature, 1941, p. 459.
2. कौटिल्यीय अर्थशास्त्र हिंदी अनुवाद सहित : अनुवादक उदयवीर शास्त्री, मेहरचंद लछमनदास दिल्ली 1969 (पुनर्मुद्रण)। □

द्‌वितीय खंड
संक्रांतिकालीन कृषि
(500 ई.–1000 ई.)

अध्याय 10

वराहमिहिर, पराशर तथा कश्यप का योगदान

(500-900 ई.)

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में कृषि-विषयक जिनता उन्नत ज्ञान पढ़ने को मिलता है, उसके बाद केवल वराहमिहिर, पराशर तथा कश्यप की कृतियों में ही देखने को मिलता है। 300 ई. पू. से लेकर 500 ई. के मध्य के 800 वर्षों में कृषि की जैसी स्थिति रही होगी उसका न तो कोई प्रामाणिक ग्रंथ मिलता है और न ही कोई अन्य जानकारी मिलती है। अवश्य ही जो भी कृषि साहित्य रचा गया होगा, वह संस्कृत में रहा होगा।

वराहमिहिर (499-628 ई. के मध्य)

कहा जाता है कि वराहमिहिर आर्यभट प्रथम (जन्म 476 ई.) के समकालीन थे। वराहमिहिर द्वारा लिखित 'बृहत्संहिता' एक अति प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसकी भाषा संस्कृत है। इस विशाल ग्रंथ में 105 अध्याय तथा 4,000 श्लोक बताए गए हैं। पंडित सुधाकर द्विवेदी ने 1895-97 में इस ग्रंथ का संपादन करके दो खंडों में प्रकाशित किया।

इसके 21 से 28 तक के अध्यायों में वर्षा-विषयक जानकारी है और 29 से 38 तक के अध्यायों में भूकंप, उल्कापात, इंद्रधनुष तथा कृषि विषयक विवरण दिये गये हैं। कृषि से संबद्ध वृक्ष संवर्धन पर एक पृथक अध्याय (अध्याय 54) है जिसमें मिट्टी की तैयारी, खाद, सिंचाई, विभिन्न मिट्टियों के लिए वृक्ष, रोगी वृक्षों का उपचार, बुआई, कटाई, प्रतिरोपण, कलम बाँधने के बारे में ज्ञान है। अध्याय 53 में भूमिगत जलस्रोतों तथा 60 से 66 तक के अध्यायों में गाय, घोड़ा, हाथी, छाग जैसे पशुओं का वर्णन है।

पिछले अध्यायों में हम भूमि, खादों, सिंचाई, वनस्पतियों आदि के संदर्भ में वराहमिहिर द्वारा तद्विषयक जानकारी दे चुके हैं, अतः उसका पिष्टपेषण करना ठीक नहीं होगा। पाठकों से अनुरोध है कि पिछले अध्यायों को पढ़ें।

कृषि आचार्य पराशर मुनि का योगदान

पराशर मुनि का उल्लेख याज्ञवल्क्य द्वारा प्रस्तुत धर्मशास्त्रकारों की सूची में आया है। इन्हें 'पराशर तंत्र' नामक ज्योतिष ग्रंथ का प्रणेता भी माना जाता है किंतु 'कृषि पराशर' नामक ग्रंथ के आधार पर ये कृषि-विशेषज्ञ सिद्ध होते हैं।

बंगाल में पराशर कृषि के मुख्य आचार्य माने जाते हैं। 'कृषि पराशर' अन्य नामों से भी प्रसिद्ध रहा है — 'कृषि संग्रह', तथा 'कृषि पद्धति'। इसकी रचना पद्यमय है। ऐसी शैली निबंध कला के पूर्व (1100 ई.) ही संभव थी। कोई भी स्मृति ग्रंथ अथवा निबंध श्लोकों में नहीं रचा गया, यद्यपि उनमें विभिन्न आचार्यों के श्लोक उद्धृत होते रहे हैं। इस तरह 'कृषि पराशर' 950-1100 ई. के मध्य की रचना मानी जाती है किंतु हम इसे संक्रांति काल के अंतर्गत ले रहे हैं।

'कृषि पराशर' संस्कृत का काव्य ग्रंथ है जिसका प्रारंभ ग्रंथकार की प्रशस्ति तथा कृषिस्तुति से हुआ है। इसमें कृषि पर ग्रह-नक्षत्रों का प्रभाव, मेघ और उसकी जातियों, आढक वर्षा, माप, उसकी व्याख्या, वर्षा का अनुमान, विभिन्न समयों की वर्षा के प्रभाव, कृषि की देखभाल, बैलों की सुरक्षा, कृषि में बैलों की संख्या, हलों की संख्या, गायों के पर्व, गोबर की खाद, हल के उपकरण, जुताई के आरंभिक कृत्य, मेघ विस्तार, कृषि-विषयक ग्रंथादि पर विवरण प्रस्तुत किए गए हैं। याद रहे इस ग्रंथ में कृषि का ही विस्तृत विवेचन है, सामाजिक या राजनीतिक विषयों का रंचमात्र भी वर्णन उपलब्ध नहीं। श्री ताराकांत काव्यतीर्थ ने 'कृषि संग्रह' के नाम से 'कृषि पराशर' का बंगला भाषा में संपादन करके बड़ा उपकार किया है। उसमें 223 श्लोक हैं। इसका अंग्रेजी अनुवाद डॉ. एस.पी. राय चौधरी ने अपनी कृति 'प्राचीन भारत की कृषि प्रणालियाँ' में दिया है। हम 'कृषि पराशर' के मुख्य अंशों का हिंदी अनुवाद दे रहे हैं —

"कृषि के ही द्वारा मानव भिक्षा वृत्ति से निवृत्त हो सकता है और कृषि के ही बल पर संसार में राजा की भाँति प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता है। वे पुरुष भी जिनके पास प्रभूत स्वर्ण, रूपा, हीरे तथा वस्त्रादि होते हैं कृषकों से ही अन्न की भिक्षा माँगते हैं क्योंकि अन्न के अभाव में गले, हाथों और कानों में स्वर्ण के आभूषण पहने रहने पर भी लोग भूखों मरते हैं। भोजन ही जीवन, भोजन ही शक्ति और भोजन ही सभी वस्तुओं का पूरक है। देव, असुर और मानव सभी भोजन पर ही निर्भर हैं।

भोजन शालि से उत्पन्न है और वह बिना कृषि के उपलब्ध नहीं, अतः सब कामों को छोड़कर सतर्कता से कृषि करनी चाहिए —

अन्नं तु धान्य संभूतं, धान्यं कृष्या बिना न च।
तस्मात्सर्वे परित्यज्य कृषिं यत्नं च कारयेत्।।

कृषि ही यश है, कृषि पूज्य है तथा कृषि ही सभी प्राणियों का प्राण है। यदि कृषि की देखरेख की गई तो सोना ही सोना, अन्यथा दरिद्रता के द्वार झाँकने पड़ते हैं। ब्राह्मणों को षट्कर्म के साथ ही कृषि कार्य भी करना चाहिए। वह जो भलीभांति कृषि करता है, सच्चा कृषक कहलाता है। कृषि के लिए वर्षा आवश्यक है और जीवन के लिए कृषि। अतः हर एक को सर्वप्रथम वर्षा का ज्ञान होना आवश्यक है। वर्षा के लिए आवश्यक है कि वर्ष के राजा और मंत्री तथा बादलों की प्रकृति और वर्षा जल की मात्रा का समुचित ज्ञान हो। वर्ष राजा का ज्ञान करने के लिए वर्ष-संख्या को तीन से गुणा करके जोड़ दिया जाता है और इस संख्या को सात से भाग देने पर जो अंक प्राप्त होगा वह नक्षत्र बताएगा, जो उस वर्ष का राजा होगा। राजा के बाद का चौथा नक्षत्र वर्ष के मंत्री को बताता है।

यदि वर्ष का राजा सूर्य हुआ तो मध्यम वर्षा होगी, चंद्रमा के होने पर अति वृष्टि, मंगल के होने पर न्यून वृष्टि और बुध, बृहस्पति तथा शुक्र के होने पर अत्यधिक वृष्टि होती है। शनि के राजा होने पर सूखा पड़ेगा और धरती धूल से भर जायेगी।

यदि वर्ष का राजा सूर्य हुआ तो फसलों की हानि होगी और प्राणी नाना

प्रकार के रोगों से दुखी होंगे। चंद्रमा के होने पर अच्छी फसलें होंगी, मानव स्वस्थ रहेंगे और अच्छी वर्षा होगी तथा प्रचुर भोजन होगा। मंगल के राजा होने पर धरती में उस वर्ष कुछ न होगा और अकाल पड़ेगा। बुध के राजा होने पर पृथ्वी में प्रचुर धान्य होगा, लोग धार्मिक और सहिष्णु बनेंगे तथा अच्छी वृष्टि होगी। बृहस्पति के होने पर पृथ्वी में भोज्य पदार्थों की भरमार होगी और राजाओं का धनधान्य दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहेगा। जब पृथ्वी पर शुक्र राजा होता है तो फसलें अच्छी तो होंगी किंतु नाना प्रकार के व्यवधान — जैसे युद्ध, तूफान, अतिवृष्टि अथवा संक्रामक रोग — आते हैं। वर्ष का राजा शनि होने पर कम वर्षा होती है और सतत तूफान आते रहते हैं।

बादल चार प्रकार के होते हैं — आवर्त, समावर्त, पुष्कर और द्रोण। वर्ष-संख्या में तीन जोड़ कर भाग देने पर जो शेष बचता है, उस वर्ष के बादल के राजा को बताता है। यदि बादल का राजा आवर्त हुआ तो पृथ्वी अंशतः भीगेगी किंतु समावर्त के अधिपति होने पर वह पूर्ण-रूपेण भीगेगी। पुष्कर के होने पर न्यून वर्षा तथा द्रोण के राजा होने पर अत्यधिक वर्षा होगी।

जब चंद्रमा मिथुन, मेष, वृष तथा मीन राशियों पर आता है अथवा जब सूर्य का कर्कट राशि में प्रवेश होता है तो 100 आढ़क वर्षा होती है। सिंह या धनु राशियों में सूर्य के प्रवेश करने पर 50 आढ़क और कन्या तथा मकर राशियों में प्रवेश करने पर 80 आढ़क पानी बरसता है। कर्कट, कुंभ, वृश्चिक तथा तुला राशियों पर 96 आढ़क वृष्टि होती है। वर्षा जल का 10 भाग समुद्रों के ऊपर, 6 भाग पहाड़ों पर और शेष चार भाग पृथ्वी पर गिरता है।

पौष मास में ढाई-ढाई दिनों के अंतर पर जितना पानी बरसता है उससे वर्ष भर की वर्षा का अनुमान लगाया जा सकता है। पौष मास का हर पाँचवा दंड मास के एक दिन का निर्धारण करता है। यदि पाँच दंड के पूर्वार्द्ध में वर्षा हो तो मास की वर्षा दिन में होगी और यदि उत्तरार्ध में वर्षा हुई तो उस मास की वर्षा रात्रि में होगी। यदि पौष मास के शुक्ल पक्ष में आकाश बादलों से आच्छादित रहे और पश्चिम में बिजली चमके तो यह समझना चाहिए कि पृथ्वी वर्षा-जल से उमड़ पड़ेगी। यदि पौष का कोई दिन कुहरा से भरा हो या वर्षा हो तो सातवें मास के उसी दिन गहरी वर्षा होगी।

यदि शुक्ल-पक्ष की सप्तमी को, माघ मास में बादल दिखाई पड़ें या वर्षा हो तो उस वर्ष अच्छी फसलें होंगी। यदि माघ मास में शुक्ल पक्ष की सप्तमी को स्वाती नक्षत्र में पानी बरसे अथवा तेज हवा चले या दिन के समय पानी भरे, बादल गरजें या पूरे आकाश में बिजली कड़के तो उस काल से कार्तिक मास तक अच्छी वर्षा होगी।

यदि माघ और फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी अथवा चैत्र और बैसाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को तेज हवा चले और बिजली चमक कर वर्षा हो तो उस साल पृथ्वी पर अच्छी वर्षा होगी और प्रचुर अन्न होगा। माघ और फाल्गुन मास में यदि किसी भी दिन पानी बरसे तो तब से सातवें मास में पृथ्वी पर गहरी वर्षा होगी। यदि बीच मास में अथवा उत्तरार्द्ध में वर्षा हुई तो उस वर्ष अति वर्षा होगी। यदि आषाढ़ मास में पूर्वा हवा बहे तो अच्छी वर्षा होगी। यदि शुक्ल पक्ष की नवमी को पानी बरसे तो भी साल-भर तक अच्छी वर्षा होगी। यदि श्रावण मास में, जब चंद्रमा रोहिणी नक्षत्र में हो, वर्षा हो तो कार्तिक मास की शुक्ला एकादशी तक वर्षा होगी अन्यथा रोहिणी पर चंद्रमा के न होने पर पृथ्वी भर में आपत्ति आयेगी।

ऋषियों का कथन है कि गृहस्थी का कार्य पिता और घर का कार्य माता को दे दो। पशुओं की देखरेख के लिए अपने ही समान विश्वसनीय व्यक्ति निर्धारित करो और कृषि के समस्त कार्यकलापों को स्वयं देखो क्योंकि गायें, धनुर्विद्या, पत्नी और राज्य, ये सभी क्षणमात्र की उपेक्षा से नष्ट हो जाते हैं। शक्त पुरुषों को कृषि की ओर ध्यान देना चाहिए क्योंकि इसके द्वारा राष्ट्र का कल्याण होगा। अशक्त पुरुष ही भीख माँगते हैं।

वह किसान जो अपने पशुओं की रखवाली करता है, स्वयं खेतों तक जाता है, वर्षा और सस्य के समयों से भली-भांति परिचित होता है, अच्छे बीज रखता है और आलस्य से रहित है, वह सभी प्रकार की फसलें उपजाता है और कभी हतोत्साहित नहीं होता।

कृषि में प्रयुक्त पशुओं से अत्यधिक परिश्रम नहीं कराना चाहिए। वे फसलें जो इस प्रकार कष्ट देकर प्राप्त की जाती हैं, शुभ नहीं। इस प्रकार से चार गुना अधिक उत्पादन भी पशुओं की आह के कारण किसानों को दरिद्र

बनाने वाला होता है। यदि पशुओं को बीजों की खली का चूर्ण, घास और अन्य पौष्टिक भोजन दिए जाते हैं और प्रति सायं तथा सुबह चरागाहों में चरने दिया जाता है तो वे कभी थकान का अनुभव नहीं कर पाते।

जिन किसानों के बाड़े सुदृढ़ होते हैं और गोबर-मूत्र से रहित होते हैं, उनके पशु बिना किसी प्रकार के पौष्टिक पदार्थों के ही बढ़ते रहते हैं किंतु यदि वे गोबर तथा मूत्र से सने हुए दिखें तो सभी प्रकार का भोजन वृथा है। पचपन हाथ लंबी गोशाला गायों के लिए स्वास्थ्यप्रद होती है। यदि गोशाला में कोई चावल का धोवन, मांड, मछली का धोवन, बिनौले या धान की भूसी रखता है तो उसकी गायें नष्ट हो जाती हैं। गृहस्थों को चाहिए कि कभी भी गोबर को गोमूत्र से साफ न करें अन्यथा गायों के ऊपर आपत्ति आने का अंदेशा रहता है। जो अपनी गायों की भलाई चाहते हैं उन्हें चाहिए कि रविवार, मंगलवार और शनिवार के दिन किसी को गोबर न दें। जो गोशाला रात्रि में दीप्त नहीं की जाती वहाँ से लक्ष्मी रूठ जाती है।

हल के आठ बैलों का प्रयोग यशवान कार्य है। जो व्यापारी हैं, वे छह बैलों का प्रयोग करते हैं, जो निष्ठुर हैं वे चार का और जो दो बैलों का प्रयोग करते हैं वे पशु-हंता कहे जाते हैं। जिन किसानों के पास 10 हल हैं वे लक्ष्मीवान हैं। पाँच हलों से संपदा और तीन हलों से भोजन की प्राप्ति होती है। दो हल वाले किसान के इतना अधिक अन्न नहीं हो पाता है कि पूर्वजों, देवों और अतिथियों को प्रदान कर सके। एक हल वाला किसान सदैव ऋणी बना रहता है।

माघ के किसी पुनीत दिवस पर गोबर के गड्ढों की पूजा की जानी चाहिए, फिर फावड़े से उसे उलटना-पलटना चाहिए। इसके पश्चात् सुखाकर उसे चूर्ण करना चाहिए। फाल्गुन मास में इसे गड्ढों के भीतर भर देना चाहिए और बीज बोते समय ही खेतों में डालना चाहिए। बिना खाद के धान उगता तो है किंतु उसमें बीज नहीं आते।

किसानों को चाहिए कि अपने खेतों को बिना रुके जोतते रहें क्योंकि ऐसा न करने पर कूँड टूट-फूट जायेंगे। खेतों को एक, तीन और पाँच बार जोतना चाहिए। एक बार की जुताई सफलता लाती है, तीन बार की जुताई

आवश्यक फसलें और पाँच बार की जुताई अत्यधिक अन्न पैदा करती है।

जो किसान शुभ अवसरों की अवहेलना करते हुए मनमानी खेती करते हैं, उनके संपूर्ण कृषि-कलाप नष्ट हो जाते हैं। यदि माघ के मास में खेती की गई तो धरती सोना उगलती है, फाल्गुन में चाँदी, चैत्र में ताँबा। यदि बैसाख में खेती की गई तो धान जैसे मूल्य की उपलब्धि होती है, ज्येष्ठ में धूल-जैसे, आषाढ़ में कीचड़-जैसे और श्रावण में धरती किसी प्रकार की फसल नहीं पैदा करती।

बीजों को बोने का सर्वोत्कृष्ट महीना बैसाख है। फिर ज्येष्ठ आता है। आषाढ़ बुरा महीना है और सावन सबसे निकृष्ट। जहाँ बाद में रोपने की आवश्यकता होती है ऐसे बीजों को बोने का सर्वोत्तम महीना आषाढ़ है, सावन बुरा है और भादों निकृष्ट। सोमवार, बुधवार और शुक्रवार के दिन न तो बीज बोना चाहिए, न पेड़ लगाना चाहिए। यदि मंगल के दिन रोपाई की गई तो चूहे लगते हैं और यदि शनिवार को हुई तो कीड़े-मकोड़ों का कोई भय नहीं रहता। शुक्ल पक्ष की चौथ, नौमी और चतुर्दशी को बीज नहीं बोने चाहिए। यदि उपरोक्त बातें ध्यान में रखी गईं तो अच्छी फसल होगी।

बीज बोने के पश्चात् खेत को तख्तों से ढक देना चाहिए अन्यथा बीज समान रूप से पूरे खेत में नहीं उग पाते।

धान के बीज दो प्रकार के होते हैं — एक तो बोये जाने वाले और दूसरे रोपने के लिए। प्रथम प्रकार का बीज स्वस्थ होता है। जब बीज से अंखुआ निकल कर पूरा पौधा हो जाए तो उखाड़ कर उसे रोपना उचित नहीं। केवल तरुण पौधों को ही उखाड़ कर रोपना चाहिए अन्यथा उनमें बीज नहीं आते। यदि श्रावण मास में रोपाई की जाए तो दो पौधों के बीच एक हाथ का फासला होना चाहिए। भादों में रोपाई करते समय यह फासला आधा हाथ और क्वाँर में उँगली की चौड़ाई का चौगुना (एक चौवा) होना चाहिए। आषाढ़ और श्रावण मास में धान के पौधों की छंटाई करनी चाहिए। यदि प्रारंभ में ही जब पौधे उग रहे हों, यह छंटाई की गई तो वे नहीं बढ़ते। यदि वर्षा न हो तो भादों मास में भी छंटाई करने पर आधी पैदावार होगी। क्वार में छंटाई करने पर किसी प्रकार की फसल की आशा व्यर्थ है। दलदल में न तो छंटाई की

आवश्यकता पड़ती है और न रोपाई की, और न ऐसे स्थानों में खाद ही डालनी चाहिए। केवल घास और तिनकों की सफाई की आवश्यकता होती है। रोपाई के पश्चात् खरपतवार की निराई आवश्यक है, नहीं तो धान के पौधे बढ़ नहीं पाते और न अच्छी उपज ही होती है। यदि सावन और भादों में यह निराई की गई तो उपज दुगनी हो जाती है, चाहे बाद में घासें भले ही उग आयें। अतः किसानों को उचित समय पर खेतों की निराई करनी चाहिए।"

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि पराशर को कृषि के विभिन्न अंगों का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त था। पानी की आवश्यकता की पूर्ति के लिए वर्षा जल पर ही निर्भर रहने वाले भारतीय कृषकों के लिए उन्होंने पानी की माप और बादलों के प्रकारों की गणना कराई है। कृषि में प्रयुक्त विभिन्न यंत्रों में से हल का विशिष्ट वर्णन पराशर की लेखनी की विशेषता है। पशुपालन के साथ-साथ उनके भोजन तथा उनसे प्राप्त गोबर, गोमूत्र अथवा उनके बाड़ों की स्वच्छता के विषय में प्रचुर ज्ञान प्रस्तुत किया गया है। कई बार की जोत, खेतों में पानी के रोकने, बीजों के बोने के समय तथा धान की खेती के विषय में विशद सूचना दी गई है। ये सभी बातें इतनी वैज्ञानिक हैं कि उन पर दृष्टिपात करते हुए हम आज भी स्तंभित रह जाते हैं। उस काल की भारतीय कृषि पद्धति निश्चित रूप से बहुत आगे बढ़ी थी। पराशर की कृषि से प्रेरणा प्राप्त करके किसान आज भी खेती करने और प्रचुर अन्न उत्पन्न करने में समर्थ हैं। इन्हीं की परंपरा का अनुसरण करते हुए खना, घाघ और भड्डरी ने भारतीय कृषि के विकास में अभूतपूर्व योग दिया।

कश्यप मुनि

कश्यप द्वारा रचित 'काश्यपीय कृषि सूक्ति' नामक एक ग्रंथ उपलब्ध हुआ है किंतु इसका रचना काल ज्ञात नहीं है। इसमें कृषि-विषयक विवरण अत्यंत सामान्य कोटि का है।

इस ग्रंथ में भूमि, सिंचाई, धान्यों, फलों आदि का विस्तार से वर्णन हुआ है।

इस ग्रंथ के अनुसार भूमि पाँच प्रकार की होती है — ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य, शूद्र तथा मिश्रित गुणों वाली।

सिंचाई के लिए तालाबों, नहरों और कुँओं का इस्तेमाल होता था। नहरें चार से लेकर दस हाथ चौड़ी होती थीं। नहरों को बलुही जमीन में न खोदने का आदेश है। कुँओं की चिनाई ईंट से की जानी चाहिए। कुओं से जल को ऊपर लाने की विधि भी बताई गई है।

फसलों में धान (शालि) मुख्य है। दालें, तरकारियाँ अन्य फसलें हैं। रंग तथा स्वाद के अनुसार धान के तीन प्रकार बताए गए हैं और धान की खेती करने की विधि का विस्तृत वर्णन हुआ है। तरकारियों में ककड़ी, बैंगन, लौकी, मिर्च और मसालों में हल्दी, अदरक, इलायची, काली मिर्च तथा धनिया का उल्लेख है। फलों में आम, अमरूद, खजूर, नारियल के साथ केला तथा अंगूर का भी वर्णन मिलता है। गन्ने की खेती करने का भी अनुरोध है। बैंगन के बीजों को धूप में सुखाकर बोने और खाद, पानी देने के बाद 20 दिन की बेड़ों को उखाड़कर अन्यत्र लगाने का भी उल्लेख है।

□

अध्याय 11

दक्षिण भारत में कृषि

दक्षिण भारत में 'संगम काल' में सामान्यतः कृषि, पशुपालन, उद्योग-धंधे और व्यापार, वाणिज्य, अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार थे। संगमोत्तर काल में दक्षिण भारत अनेक राजवंशों की राजनीतिक गतिविधियों का क्रीड़ास्थल बना। यद्यपि गुप्त काल को उत्तर भारत के लिए 'स्वर्ण युग' कहा गया है किंतु दक्षिण भारत छठी सदी ईस्वी से लेकर 1200 ई. के बीच पल्लवित-पुष्पित होने वाले राष्ट्रकूटों, पल्लवों, चालुक्यों तथा चोलों जैसे महान राजवंशों के संरक्षण में ही राजनीतिक प्रमुखता प्राप्त करने तथा आर्थिक क्षेत्रों में उन्नति करने में सक्षम हुआ।

संगमोत्तरकालीन दक्षिण भारत की अब काफी सामग्री प्राप्त है। उससे पता चलता है कि अधिकांश आबादी गाँव में रहती थी और मुख्यतः खेती करती थी। भूमि का स्वामी होना सम्मानजनक माना जाता था। गाँव की भूमि गाँव वालों की थी। भूस्वामी दो प्रकार के होते थे – बड़े तथा छोटे। बड़े भूस्वामी मजदूरों की सहायता से खेती कराते थे और छोटे भूस्वामी यानी खेतिहर स्वयं खेती करते थे।

भूमि का वर्गीकरण

भूमि काली, लाल मिट्टी वाली, सिंचित, असिंचित बाग, बंजर, परती आदि श्रेणियों में विभक्त थी। असिंचित भूमि वर्षा पर निर्भर थी। भूमि की किस्म के अनुसार कर लगाया जाता था।

चोल लेखों के अनुसार भूमि तीन वर्गों में विभाजित थी –

1. **वेत्तम बगै** – इसके मालिक स्वयं काश्तकार थे – ये बल्लान वैग कहलाते थे।

2. जीवित, काणि, भोग, वृत्ति प्रकार की जमीनें — ये जमीनें सेवाओं के बदले काश्तकारों को और कभी-कभी सैनिकों को मिलती थीं।

3. ब्राह्मणों को दी जाने वाली जमीनें ब्रह्मदेय, मंदिरों को दी जाने वाली देवदान तथा भोजनालयों को दी जाने वाली शाल भोग कहलाती थीं।

कृषि के लिए शासन की ओर से प्रोत्साहन मिलता था। सरकार सिंचाई की व्यवस्था करती थी। जिस तरह उत्तर भारत में सुदर्शन तटाक (गिरनार पर्वत के नीचे काठियावाड़ में) के निर्माण तथा मरम्मत का उल्लेख है उसी तरह दक्षिण भारत में शासकों ने सिंचाई की ओर ध्यान दिया। नदियों से नहरें निकाली जाती थीं। कावेरी का तट ऊँचा किया गया। चोल लेखों में चोल वारिधि, कलिमनेरि (मदुरा में आनैमलै के निकट), कलिनगैकुलम (शोलपुरम्) तथा बाहुरवारिधि का उल्लेख है। जो लोग बंजर या जंगली जमीन पर पहली बार खेती करते थे उन्हें कुछ काल के लिए लगान से छूट दी जाती थी। 'शुक्रनीतिसार' में लिखा है 'यदि कोई व्यक्ति नौतोड़ भूमि में खेती करे तो राजा को उस समय तक कोई भूराजस्व नहीं लेना चाहिए जब तक उसका लाभ उसकी लागत से दुगना न हो जाए।'

फसलें

दक्षिण में अनेक प्रकार के खाद्यान्न (ज्वार, बाजरा, चावल, दलहन, कपास, गन्ना), अनेक प्रकार के फल, फूल, सब्जी, मसाले पैदा किए जाते थे। बागों/वनों में नारियल, पान, सुपारी मुख्य फसलें थीं। अरब यात्रियों ने (900-1000 ई.) लिखा है कि कर्नाटक में ज्वार, बाजरा, कोंकण में चावल, नारियल, सुपारी, मैसूर में चंदन, टीक, आबनूस पैदा होता था। नारियल दक्षिण भारत की प्रमुख उपज थी — यह कल्पवृक्ष है। मार्को पोलो ने लिखा है कि पांड्य राज्य में अदरक तथा दालचीनी प्रचुर मात्रा में पैदा की जाती थी। याकूत ने लिखा है कि कोलम तथा मदुरा के बीच पहाड़ी ढालों पर कपूर उगता था। इद्रिसी ने लिखा कि मालाबार की पहाड़ी में इलायची पैदा होती थी। इब्नसाईद के अनुसार मालाबार में काली मिर्च होती थी। चंदन मलय की पहाड़ियों में उत्पन्न होता था। कोलम (कोइलोन) में नील की खेती की जाती थी।

सिंचाई

'अभिधानरत्नमाला' के अनुसार उर्वर, ऊसर, परती, रेगिस्तान, शादूल, नड्वल, काली मिट्टी तथा लाल मिट्टी — ये वर्ग थे। यही नहीं, वर्षा तथा नदी से सिंचित भूमियों का उल्लेख है।

चोल राजाओं ने कावेरी नदी के तट पर अनेक बाँध बनवाये। श्रीरंग टापू के नीचे बनाया गया बाँध 1,240 मीटर लंबा, 12-18 मीटर चौड़ा था। इसके साथ कई तड़ाग भी बनवाये। चोल वारिधि, कलिवेनर, कलिनमै, कुलय तथा बाहू तड़ागों का उल्लेख चोल लेखों में है। पल्लव राजा महेन्द्र वर्मा ने महेन्द्रवाडि नामक एक विशाल सरोवर का निर्माण कराया था। महबूत नगर में भीमसमुद्र नामक तालाब का संकेत है। चैत्य तड़ाग काफी बड़ा था और आज भी पांच-छः वर्गमील में फैला है। चालुक्य लेखों से पता चलता है कि होट्टूर के पास केम्मोरे का तालाब, बीजापुर जिले में गेंदूर में 1041 ई. में रट्ट समुद्र, 1052 ई. में पोरिय केरे बाँध बने। चोल लेखों के अनुसार तालाबों की सफाई ग्राम सभा के जिम्मे थी।

भूमि से उपज

चोल राजकेशरि राजेन्द्र के चिदंबरम् लेख से पता चलता है कि 44 वेलि खेत में 500 कलम धान पैदा हुआ। असिंचित खेतों की अपेक्षा सिंचित खेतों से अधिक उपज मिली। चोल राज्य में तंजोर में 1006 ई. में एक वेलि भूमि 10 कलंजु सोने में बेची गई। 1073 ई. में कांचीपुरम में एक वेलि भूमि 20 काशु में बेची गई। त्रिरुचिरापल्ली में 1133 ई. में प्रति वेलि मूल्य 22.5 काशु था।

पशुपालन

ग्वाले गड़रिये पशु पालते थे। चरने के लिए चरागाह होते थे। चरागाहों के लिए समय-समय पर शासकों द्वारा दान मिलता रहता था। व्यावसायिक पशुपालक जातियाँ एक गाँव से दूसरे में घूम-घूम कर किसानों के खेतों में बाँधतीं और उनकी उर्वरता बढ़ातीं जिसके बदले में किसान अनाज देते। पशुओं से दूध दही के अलावा ऊन भी मिलता। जानवरों का मलमूत्र खाद का काम

देता था।

चोल साम्राज्य में 921 ई. में नौ भेड़ों की कीमत एक काशु थी जबकि 1136 ई. में एक गाय की कीमत 15 काशु थी। पशुओं पर भी कर लगाया जाता था।

अकाल/बाढ़

'प्रबंध चिंतामणि' में कहा गया है कि चालुक्यराज भीम के समय भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। इसी तरह सातवीं सदी के मध्य में पांड्य राज्य में महान दुर्भिक्ष पड़ा। 1201 ई. में भी अकाल पड़ा। चोल शासक कुलोत्तुंग के समय भीषण बाढ़ आई जिससे गाँव और फसलें नष्ट हुईं। राज्य की ओर से राहत कार्य कराया गया।

वन संपदा

विभिन्न पशुओं की खालें, कस्तूरी, लाख जैसी वस्तुएँ वन संपदा थीं। कर्नाटक में चंदन, सागौन और आबनूस के जंगल थे। हाथी दाँत और जंगली लकड़ी भी वन संपदा में परिगणित होते थे।

एक सुपारी के बाग में 2,000 वृक्षों का उल्लेख हुआ है। चोलों के समय में वनों तथा उपवनों की देखभाल के लिए अधिकारी होते थे।

□

तृतीय खंड
मध्यकालीन कृषि
(1000 ई.–1800 ई.)

मध्यकालीन कृषि
(1000-1800 ई.)

मध्यकालीन कृषि का विस्तार दसवीं शताब्दी से लेकर अठाहरवीं शताब्दी तक माना जा सकता है। हमने देखा कि 'अर्थशास्त्र' के लेखन काल के कई सौ वर्ष बाद केवल पराशर मुनि की रचना से कृषि के विषय में प्रामाणिक जानकारी मिलती है। उसके बाद देशी भाषाओं में कृषि साहित्य की रचना होने लगी। इस संदर्भ में बंगाल में प्रचलित खना के वचन तथा उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान तक प्रचलित घाघ-भड्डरी की कहावतें ध्यान देने योग्य हैं। सौभाग्यवश इन वचनों और कहावतों के संकलन उपलब्ध हैं जिनके आधार पर लोकप्रचलित कृषि ज्ञान का मूल्यांकन किया जा सकता है।

इस लोक प्रचलित धारा के साथ ही भारत में विदेशी शक्तियों के क्रमशः सुदृढ़ होने पर मुगल काल में कृषि के विषय में कुछ व्यापक सुधार किए गए। इनके प्रामाणिक विवरण उपलब्ध हैं। मुगल काल के बाद ही अंग्रेजी-काल आया जिसमें परंपरागत कृषि को आमूलचूल परिवर्तित करके वैज्ञानिक कृषि की नींव डाली गई।

इस खंड में हम पहले बंगला में कृषि साहित्य और तब राजस्थानी और अवधी में प्राप्त कृषि कहावतों का विवरण देंगे। फिर मुगलकालीन कृषि पर विचार होगा।

अध्याय 12

बँगला में कृषि साहित्य

संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में भी प्रचुर कृषि साहित्य उपलब्ध है। इनमें से बँगला तथा हिंदी में उपलब्ध कृषि विषयक जानकारी का परिचय अभीष्ट होगा।

बँगला साहित्य में कृषि, ज्योतिष तथा चिकित्सा के बारे में 'डकार्णव' नामक ग्रंथ विख्यात है जिस पर बौद्ध तंत्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री को नेपाल से 'डकार्णव' की प्रति प्राप्त हुई थी। यह रचना संभवतः दसवीं सदी की है। यह चार्वाक दर्शन से प्रभावित जान पड़ती है। शुद्ध कृषि विषयक ग्रंथों में 'डाकेरवचन' के अतिरिक्त एक अन्य ग्रंथ भी प्रचलित है। नाम है 'खन्नार वचन'। लोक में अत्यधिक प्रचलित होने से इसमें तमाम परिवर्तन हुए हैं। बंगाल में डाक तथा खना की कहावतें आज भी किसानों की कंठहार बनी हुई हैं। यह रचना दसवीं सदी की है। खना से संबद्ध एक अन्य बँगला पुस्तक मेरे देखने में आई है। इसका नाम है — 'बराहमिहिर खना ज्योतिष ग्रंथ', जिसे काली मोहन विद्यारत्न ने संगृहीत करके सुलभ कलकत्ता लाइब्रेरी से प्रकाशित किया है।

बँगला का एक अन्य ग्रंथ रमई पंडित द्वारा रचित 'शून्य पुराण' है जो ग्यारहवीं सदी की रचना है। इसमें शिव जी को किसान के रूप में दर्शित किया गया है।

"हे प्रभु ! आप हल क्यों नहीं जोतते ? भीख माँगने से आपको कभी-कभी ही चावल मिलता है। अतः आप खेती के लिए कोई दलदली जमीन चुन लें। यदि ऐसी भूमि न मिले और सूखी जमीन ही हाथ लगे तो उसे भली-भांति सींचें।

'जब आपको चावल मिलेगा तो आपको भोजन पाकर प्रसन्नता होगी।

आप कब तक बिना भोजन के रहेंगे' ?

आप कपास की खेती क्यों नहीं करते ? कब तक आप बाघ का चमड़ा पहनते रहेंगे?

आप अपने शरीर में राख मले रहते हैं। आप क्यों नहीं सरसों तथा तिल की खेती करते (और तेल लगाते) ?

आप प्रचुर मात्रा में साग-सब्जी उगायें। और हाँ, केला को नहीं भूलें, जिससे धर्म पूजा के लिए किसी चीज की कमी न रह जाए।"

इस तरह प्रकारांतर से धान की खेती के लिए दलदली भूमि की आवश्यकता, कपास बोने, तिलहन की खेती करने और साग-सब्जी के साथ केला लगाने की बातें कही गई हैं।

अठारहवीं सदी के 'शिवायन' (रामेश्वरकृत) काव्य में शिव जी के दास भीम को उनकी सहायता करते दिखाया गया है। शिवजी के माध्यम से खेती की बातें लिखना बँगला भाषा की अपनी विशेषता जान पड़ती है।

शिव जी अपने हलवाहे भीम से कहते हैं — 'तुम चार दंड समय में खेत को समतल कर दो'।

धान कुंडों में लगाया गया था। शिवजी स्वयं खुरपा लेकर निराने लगे। उन्होंने दूर्वादल, श्यामा, त्रिशिरा तथा केसुर घासों को सावधानी से निकाला।

बूढ़े शिव ने खेत को क्षण भर के लिए नहीं छोड़ा। वे शेर की तरह उसे निरखते रहे।

खना की जीवनी

उज्जयिनी में विक्रमादित्य नाम के राजा हुए जो अत्यंत धर्मात्मा और प्रजापालक थे। वे ज्ञान-विज्ञान में अपना समय बिताते और इसी के परिणामस्वरूप राजधानी में उन्होंने एक नवरत्न सभा की प्रतिष्ठा भी की थी। महापंडित कालिदास, भवभूति आदि नौ गुणी उस सभा के रत्न थे। इसमें से

प्रत्येक अपने-अपने विषय का प्रकांड पंडित था। इन्हीं नवरत्नों में प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य वराहदेव भी थे। किंबदंती है कि बराह ने गणना द्वारा आकाश के नक्षत्र और जल के परिमाण को ठीक-ठीक बतलाया। उस समय बराहदेव के बराबर न्याय ज्योतिर्विद कोई दूसरा न था।

इनका जन्म मालवा के चुंबी नामक ग्राम में हुआ। बचपन से ही ज्योतिष विद्या से इनका अनुराग था। अतः उस समय कोई ज्योतिष ग्रंथ न प्राप्त होने पर भी तमाम अनुसंधान करके इन्होंने इन ग्रंथों का संग्रह किया। बाद में राजा विक्रमादित्य ने इनके गुणों से प्रभावित होकर अपनी राजधानी में बुलाकर रत्न बना लिया। वहीं पर बराहदेव ने विवाह किया। इनकी स्त्री धरणी देवी थीं। इन्होंने पहले ही गणना द्वारा जान लिया कि धरणी देवी के जो गर्भ है उससे रूपवान तथा दीर्घायु सुपुत्र जन्मेगा। जन्म होते ही बराहदेव ने उस पुत्र की आयु गणना की। भ्रमवश बराह देव ने उसकी उम्र एक साल निकाली। तीन बार ऐसी ही गणना की किंतु भ्रमवश वही गणना उतरी इसलिए पुत्र को एक ताम्र-पत्र में रखकर समुद्र में प्रवाहित कर दिया। धीरे-धीरे वह ताम्र पात्र सिंहलद्वीप के किनारे जा लगा। संयोगवश उसी समय सिंघल की एक राजकन्या, खना देवी, स्नान करने आई थी। उसने ताम्र-पत्र को देखा तो उठा लिया। उसमें नवजात शिशु को देख आनंदित हो उठी।

बाल्यकाल से ही खना देवी ज्योतिष विद्या की पारदर्शिनी थीं। ऐसी कथा है कि उस समय के सिंहलद्वीप के सभी राक्षस ज्योतिर्विद्या में निपुण होते थे। एक बार मय दावन की पुत्री खना को, यह जान कर कि आगे चलकर वह अपने पति सहित ज्योतिष विद्या में परम निपुण होगी, राक्षसों ने चुरा लिया और उसका हरण करके अपने घर में लाकर उसे ज्योतिष की अच्छी शिक्षा दी। कुछ लोग इन्हें राजपूताना की और कुछ बंगाल की मानते हैं।

कार्यवश आई हुई खना देबी ने ताम्र-पात्र में रखे हुए शिशु को उठा लिया और ज्योतिष गणना से यह जान लिया कि उस शिशु की आयु 100 वर्ष होगी और वह आगे चलकर राजा से सम्मानित ज्योतिषी होगा। राक्षसों ने भी बाद में गणना द्वारा वैसा ही निरूपण किया और उस शिशु का नाम मिहिर रख दिया। बड़ा होने पर उसे ज्योतिषशास्त्र की शिक्षा दी गई। बाद

में मिहिर एक अपूर्व ज्योतिषी बन गया।

परस्पर ज्योतिष के वाद-विवाद में खना और मिहिर आनंद उठाते रहे। बाद में दोनों में प्रेम हो जाने पर राक्षसों ने दोनों का विवाह कर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् मिहिर ने गणना द्वारा अपने जन्म, माता-पिता तथा जन्म-भूमि का पता लगाया तो उनके दर्शनार्थ आकुल हो उठा। अतः महेंद्र-क्षण में दोनों ने सोच-विचार कर सिंहलद्वीप छोड़ दिया। मिहिर ने अपनी पुरी में जाकर माता-पिता को अपना परिचय दिया। पहले तो बराह को कोई विश्वास न हुआ किंतु बाद में खना देवी ने जन्म-लग्न देख कर बराह की भूल दिखा दी। अपनी भूल पर बराह लज्जित हुआ किंतु गुणवती पुत्रवधू तथा गुणज्ञ पुत्र को पाकर वह अत्यंत उल्लसित हो उठा। फिर उसे आत्मग्लानि होती रही कि 'किस प्रकार भूलवश मैंने अपने विद्वान पुत्र को त्याग दिया था, अतः मैं तीनों लोकों में मुँह दिखाने योग्य नहीं। यह ज्योतिष विद्या मेरे सर्वनाश का कारण बनी। आज ही समस्त ज्योतिष ग्रंथों को समुद्र में फेंके देता हूँ।' किंतु खना और मिहिर ने रोकते हुए कहा, 'इसमें ग्रंथों का कोई दोष नहीं, आप दोषी हैं।' बराह ने पूछा, 'जिस क्षण राक्षसों ने तुम्हें रोकने के बजाए समुद्र पार कराया वह शुभ दिन था या अशुभ? खना ने प्रत्युत्तर में कहा — 'वह शुभ दिन था और था माहेन्द्र क्षण।' बराह ने फिर पूछा, 'यदि उस समय चंद्रमा ठीक न था तब यात्रा का यह शुभ क्षण कैसे हो सकता था ?' खना बोलीं, 'यदि चंद्रमा ठीक न हो तो इस प्रकार यात्रा करनी चाहिएः

तिथियार स्वनक्षत्र, मासेर यत दिन।

एकत्र करिया तारे, साते कर हीन।।

एके लाभ दुये शुभ, तिने शत्रु क्षय।

चतुर्थेते कार्य सिद्धि, पंचमे संशय।।

षष्ठेते मरण जेन, शून्य हले दुख।

(तिथि, बार, नक्षत्र, महीने का जो दिन हो सबको जोड़ कर सात घटाने से यदि एक शेष रहे तो लाभ, दो तो शुभ, तीन में शत्रुहानि, चार में कार्यसिद्धि, पाँच में मृत्यु और शून्य होने से दुख होता है)।

बराह देव पुत्रवधू के इस पांडित्य पर अत्यंत प्रसन्न हुए और राजा विक्रमादित्य से अपने पुत्र की प्रशंसा की। बाद में विक्रमादित्य ने मिहिर को नवरत्नों में से एक रत्न बना लिया। नित्यप्रति बराह और मिहिर दोनों ही राजसभा जाते और वहाँ पर जो-जो कठिनाइयाँ उपस्थित होतीं, घर आकर खना से उन पर चर्चा करते। खना उन्हें हल करतीं। इस प्रकार कुछ दिनों के बाद महाराज विक्रमादित्य को खना की विद्वता का पता चला। महाराज ने हँस कर बराह देव से कहा, 'तुम्हारी पुत्रवधू अत्यंत गुणवती है, अतः हम उसे अपनी नवरत्न सभा का अन्यतम रत्न बनाना चाहते हैं।' पिता-पुत्र दोनों ही राजा के इस अभिप्राय को समझ गए। अतः जब वे दोनों घर लौट रहे थे तो उन्होंने परामर्श किया कि यदि खना की जिह्वा को मिहिर देव काट ले तो वह बोल न पाएगी जिससे नवरत्न बनने की कोई बात ही न उठ पायेगी और उनकी लाज भी बच जाएगी। अतः घर जाकर मिहिर ने खना से कहा, 'तुमने इस नराधम की किस प्रकार से रक्षा की किंतु वही आज तुम्हारी जीभ काटना चाहता है।' खना ने उसी समय गणना की और देखा कि उसकी मृत्यु निकट है, अतः वह बोली, 'स्वामी ! शीघ्र ही मेरी जीभ काट लें, पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करें, मेरी मृत्यु उपस्थित है। मेरी जीभ का यह गुण है कि जिस घर में वह रहेगी वहाँ कोई मूर्ख न होगा। सभी ज्योतिर्विद होंगे।' उसी समय मिहिर ने जीभ काट ली और खना की मृत्यु हो गई। मृत्यु से बराह, मिहिर तथा अन्य सभी रोने लगे। मिहिर ने जहाँ जीभ काट कर रखी, वह स्थान उसे भूल गया और दो-चार दिन बाद जब उसे स्मरण आया तब तक वहाँ चींटियों ने उसे चट कर दिया था। कहा जाता है कि इसी कारण आज भी चींटियाँ बहुत बुद्धिमान होती हैं और किसी स्थान में रखी हुई चीज का उन्हें पता चल जाता है। खना द्वारा वर्णित प्रमुख कृषि संबंधी सूचनाएँ नीचे दी जा रही हैं।

वर्षा के शुभा-शुभ लक्षण

सागरे गुटि शस्ये भरा, सुख बछरा वसुंधरा (1)

जिस वर्ष सागर में गुटिकापात हो, उस साल को अच्छा जानो अर्थात् उस वर्ष अच्छी खेती होगी।

काणार छाता बुधेर माथाय।
क्षेतेर फसल राखवे कोथाय (2)

जिस वर्ष बुध राजा तथा शुक्र मंत्री हो उस वर्ष पृथ्वी फसल से पूर्ण होगी।

शनि राजा मंगल पात्र।
चाष खोंड केवल मात्र (3)

जिस वर्ष शनि राजा तथा मंगल मंत्री हो उस वर्ष अनावृष्टि के कारण संपूर्ण खेती चौपट हो जाएगी।

पाँच रवि मासे पाये।
झराय किम्बा खराय जाय (4)

जिस वर्ष एक महीने में पाँच रविवार हों, उस वर्ष अतिवृष्टि से खेती नष्ट हो जायेगी।

चैत्रे तेर शनि घरे। काठार फसल कुडोय धरे (5)

जिस वर्ष चैत में तेरस को शनिवार पड़े उस वर्ष एक बीघे जमीन में एक कोठिला अन्न होगा अर्थात् बहुत कम अनाज पैदा होगा।

पाँच शनि पाय मीने।
शकुनि मांस ना खाय घृणे (6)

जिस वर्ष चैत मास में पाँच शनिवार हों उस वर्ष बहुत मानव मरेंगे और कौवे भी घृणा के कारण नरमांस न खायेंगे।

मधुमासे प्रथम दिवसे हये जे जे बार,
रवि चोषे, मंगले वर्षे, दुर्भिक्ष है बुधवार।
सोम, शुक्र, गुरुवार, पृथिवी ना बय शस्येर भार (7)

चैत के महीने का पहला दिन रविवार हो तो अनावृष्टि हो, मंगलवार हो तो सुवृष्टि हो, बुधवार हो तो दुर्भिक्ष हो, शुक्रवार और बृहस्पतिवार होने

से पृथ्वी शस्य का भार न वहन करे अर्थात् खूब फसल हो।

डाक दिया बले मिहिरेर स्त्री शुन पतिर पिता,
भाद्र मासे जलेर माझे नड़ेन वसुमाता।
राज्यनाश, गोनाश, हये अगाध बान,
हाते काठागृही फेरे किंतु ना पाय धान (8)

खना अपने ससुर से कहती है, 'भादों महीने में पानी के बीच पृथ्वी काँप जाने से महा अमंगल होता है, मानवों के मरने से राज्यनाश, गोनाश और ऐसा दुर्भिक्ष आता है कि गृहस्थ द्वार-द्वार भिक्षा-पात्र लिए घूमते रहने पर ही एक मुठ्ठी भिक्षा नहीं पाता।

आमे धान, तेंतुले बान (9)

अधिक आम जिस साल हो उस साल अच्छा धान होगा और जिस साल इमली अधिक हो उस वर्ष बाढ़ आयेगी।

यदि ना देखे अघाने वृष्टि, तबे ना हबे कांठाले सृष्टि (10)

जिस वर्ष अगहन में वृष्टि न होगी उस वर्ष कटहल नहीं फलेगा।

आँधी और वर्षा का ज्ञान

चैते थरथर बैसाखे झड़ पाथर।
ज्येष्ठे तारा फूटै, तबे जानबे वर्षा बटे (11)

जिस वर्ष चैत में शीत हो, बैसाख में आँधी आये और पत्थर पड़े तथा ज्येष्ठ के महीने में आकाश साफ रहे उस वर्ष वर्षाकाल में प्रचुर पानी बरसेगा।

कि कर श्वसुर लेखा.जोखा, मेघेइ बुझवे जलेर लेखा।
कोदाले कुडले मेघेर गा, माझे दिच्छे बा।।
चाषाके बलगे बाँधते आ'ल,
आज न हये हबे काल (12)

खना अपने ससुर से कहती है 'यदि बादल टुकड़े-टुकड़े हो जाएँ और

बीच-बीच में हवा बहे तो समझना चाहिए कि शीघ्र ही वर्षा होगी। ऐ कृषको ! अपने-अपने खेतों में मेंड़ बाँधना प्रारंभ कर दो क्योंकि यदि आज न बरसा तो कल अवश्य बरसेगा।'

आषाढ़े नवमी शुक्ल पाखा, किकर श्वसुर लेखा-जोखा।
यदि बरसे मुसलधारे माझा समुद्रे बगा चरे।
यदि बरसे छिटे-फोंटा, पर्वते है मीनेर घटा।।
यदि बरसे निभि झिमि, शस्येर भार ना सय मेदिनी।
हेसे चाकि बसे पाटे, चाषार गरु बिकाय हाटे (13)

यदि आषाढ़ की शुक्ला नवमी को मूसलाधार पानी बरसे तो खना कहती है कि हे श्वसरु! बिना सोचे-विचारे समझना चाहिए कि उस वर्ष अनावृष्टि से समुद्र भी सूख जाएँगे। यदि उस दिन थोड़ा पानी बरसे तो उस साल भीषण वर्षा होगी और खूब मछली पैदा होगी। यदि मंद-मंद वर्षा हो तो सुवृष्टि के कारण प्रचुर शस्य होगी और यदि उस दिन सूर्यास्त के समय आकाश साफ हो और सूर्य हँसते-हँसते डूबे तो बिल्कुल खेती न होगी। उस वर्ष किसान को अपने पशु बाजारों में बेच कर अन्न इकट्ठा करना पड़ेगा।

पौष गरमि बैसाख जाड़ा, प्रथम असाढ़े भरवे गाड़ा।
खना बले, सुनो हे स्वामी, सावन भादर नाइको पानी (14)

खना अपने पति से कहती है, 'सुनो ! 'जिस वर्ष पूस में गर्मी और बैसाख में जाड़ा लगे, अषाढ़ लगते ही सब गड्ढे भर जाएँ तो यह समझना चाहिए कि सावन-भादों फिर पानी न बरसेगा'।

यदि बरे आघने, राजा जान मागने।
यदि बरे पुषे, कड़ि है तुषे।
यदि बरे माघेर शेष, धन्य राजार पुण्य देश।
यदि बेर फाल्गुने, चिना काउन दिवगुने (16)

यदि अगहन में पानी बरसे तो राजा भिखारी हो जायेगा और यदि पूस में बरसा तो कुट्टी बेच कर धन पाया जा सकता है। यदि माघ के अंत में पानी बरसे तो उस राजा का देश धन्य है। यदि फागुल में बरसे तो चीना (साँवा) खूब बढ़ता है।

पूर्वेते उठिले काँड, डाम्बा डोबा एकाकार (17)

पूर्व में यदि इंद्रधनुष दिखाई पड़े तो शीघ्र ही वर्षा होगी और ऊँचे तथा नीचे स्थान पानी से भर कर एकसमान हो जायेंगे।

पश्चिमेर धनु नित्य खरा, पूर्वेर धनु बर्षे भरा (18)

पश्चिम में इंद्रधनुष दिखाई पड़ने से अनावृष्टि तथा पूर्व में दिखाई पड़ने से अतिवृष्टि की सूचना मिलती है।

चाँदेर सभा मध्ये तारा, पानी बरसे मूसलधारा।

दूर सभा निकट जल, निकट सभा रसातल (19)

यदि चंद्रमा से सभा दूर हो तो शीघ्र ही पानी बरसेगा और यदि निकट हो तो अनावृष्टि।

(**नोटः** 'सभा', चंद्रमा के चारो ओर दिखाई पड़ने वाला मंडल है जो चक्रवात वर्षा का द्योतक है)।

प्रथम बझरे ईशाने बाय। हबेई वर्षा खनाय कै (20)

खना कहती है कि यदि वर्षा प्रारंभ होते समय ईशान कोण से हवा चले तो उस वर्ष प्रचुर वर्षा होगी।

ब्यांग डाके घन.घन। शीघ्र वृष्टि हबे जेनों (21)

अगर मेंढक जोर-जोर से बोलें तो समझना चाहिए कि शीघ्र पानी बरसेगा।

माघ मासे बरसे देवा। राजा छेड़े प्रजार सेवा (22)

जिस वर्ष माघ में वर्षा हो उस वर्ष अच्छी खेती होने के कारण प्रजा

का सम्मान राजा से अधिक होगा।

पोषेर कुया, बैसाखे फल, य दिन कुया त दिन जल।

शनिर सात मंगलेर तिन, आर सब दिने दिन (23)

पूस में जितने दिन कुहरा पड़े उतने दिन बैसाख में पानी बरसेगा। यदि शनिवार से पानी बरसना प्रारंभ हो तो सात दिन तक बरसेगा, दूसरे दिन वर्षा आरंभ होने से उसी दिन पानी बरस कर रह जायेगा।

पूर्ण आषाढ़ दक्षिणा बय। सेइ वत्सर वन्या हय।

ज्येष्ठे सुखा आषाढ़े धारा। शस्येर भार न सहे धरा।

चैत्रे वृष्टि नाशे रिष्टि। चाषार क्षेते शुभ दृष्टि।

ज्येष्ठे खरे अषाढ़े झरे। केटे मेड़े गोलाय भरे (24)

यदि पूरे आषाढ़ भर दक्षिणीं हवा चले तो उस वर्ष बाढ़ आती है। अगर ज्येष्ठ में सूखा पड़े और आषाढ़ में पानी बरसे तो पृथ्वी में बहुत फसल होगी। अगर चैत में पानी बरसे तो विनाश की संभावना हट जाती है और खेती पर अच्छी निगाह हो जाती है। यदि ज्येष्ठ में सूखा पड़े और आषाढ़ में पानी बरसे तो किसान काट मांड कर अपनी खत्ती भर लेता है।

चैते कुया भादरे बान। नरेर मुंड गुड़ागड़ि यान (25)

यदि चैत्र में कुहरा पड़े और भादों में बाढ़ आये तो चारों ओर मुर्दे ही मुर्दे दिखाई देंगे।

बादल, बामुन, बान। दक्षिणा पलेइ यान (26)

जिस तरह दक्षिणा पा जाने पर ब्राह्मण नहीं रुकता — चला जाता है उसी प्रकार बादल और बाढ़ भी दक्षिणी हवा चलने पर नष्ट हो जाते हैं।

खेती की सफलता

धान

यदि बरसे मकरे, धान हबे टिकरे (27)

यदि मकर यानी माघ में पानी बरसे तो ठीकर अथवा ऊँची भूमि में भी धान पैदा होगा।

करकट छरकट सिंह शुका कन्या काने कान।
बिना व्यये वर्षे तुला कोथा राखबि धान (28)

करकट अर्थात् आषाढ़ महीने में, छरकट अर्थात् प्रचुर वृष्टि हो, सिंह अर्थात् भादों में, कन्या अर्थात् कुंवार में काने कान अर्थात् यथेष्ट वर्षण हो और तुला अर्थात् कार्तिक में हवा न बहे और धीरे-धीरे वर्षा हो तो प्रचुर धान पैदा होगा।

यदि है चैते वृष्टि, तबे है धानेर सृष्टि।
कार्तिक ऊन जले, खना चले धान दूनो फले (29)

खना कहती है कि कार्तिक महीने में थोड़ी-थोड़ी वृष्टि हो तो हेमन्तिक धान दुगना पैदा होगा। चैत में पानी बरसने से धान की खेती अच्छी होगी।

दिने रोद वाते जलताते बड़ि धानेर बल।
वैशाखेर प्रथम जले, आउश धान्य द्विगन फले।
खना बले सुन माइ, तुलाय तुला अधिक पाइ (30)

अगर दिन में धूप और रात में पानी हो तो दिनों-दिन धान बढ़ेगा। खना कहती है कि यदि बैसाख के प्रारंभ में पानी बरसे तो औस धान दुगुना पैदा होगा और यदि कार्तिक मास में अच्छी तरह पानी बरसे तो कपास अधिक होगी।

खना बले सुन कृषक गण, हाल लये माठे जावे यखन।
शुभ क्षण देखे करिबे यात्रा, पथे जेन ना हय अशुभ वार्ता (31)

खना कहती है कि किसानों ! शुभ लक्षण देखकर खेत की यात्रा करनी चाहिए, और रास्ते में अशुभ वार्ता नहीं करनी चाहिए।

आगे गिये करो दिक् निरूपण, पूर्वादिक हते कर हल चालन।
ताहा हले तोर समस्त आशय, हइबे सकल नाहिक संशय।
बाप बेटाय चाष करा चाइता, अभावे सहोदर भाइ (32)

खेत में पहुंच कर पहले दिशा का निर्णय करो, फिर पूर्व से हल जोतना शुरू करो। तब तुम्हारा मनोरथ सफल होगा, इसमें संदेह नहीं। पिता और पुत्र को साथ-साथ खेती करनी चाहिए, नहीं तो अपने सगे भाई को साथ ले लेना चाहिए।

अमा पूर्णिमाय ये धरे हाल, तार दुःख चिरकाल।
तार बलदेर है बात, नाहि थाके घरे भात।
खना बले सुन आमार बानी, ये चखे तार प्रमाद गनि (33)

खना कहती है कि पूर्णिमा और अमावस्या को हल जोतने से सदा दुःख रहता है। बैलों को गठिया रोग हो जाता है और घर में खाने को अनाज नहीं रह जाता। अतः हमारी वाणी सुनो, जो जोतता है वह प्रमादी ही है।

आछे बलद ना बय हाल, तार हा भात चिरकाल।
आउशेर मुँह बेले, पाटर भुँइ आटाले (34)

जिसके पास अच्छे हल नहीं हैं और जो हल नहीं जोतता वह सदा भूखा रहता है। भुरभुरी मिट्टी में औस किस्म का धान होता है और पिसान जैसी चिकनी मिट्टी में पाट (जूट) अच्छा होता है।

मानुष मरे याते, माछला सारे ताते।
पचला साराय गाछला सारे,
गोधला दिये मानुष मारे (35)

जिन गंदी वस्तुओं से मानव का स्वास्थ्य खराब होता है और मृत्यु होती है उन्हीं से पेड़ फलते-फूलते हैं। सड़ी हुई चीजों से पेड़ की बाढ़ अधिक होती है लेकिन इन्हीं गंदी चीजों से मानव की मृत्यु हो सकती है।

धान लगाने की विधि

आउश धानेर चाष, लागे तिन मास।
कोल पातला डागर गुछि,
लक्ष्मी बलेन ऐखाने आछि (36)

औस धान तीन माह में तैयार हो जाता है। फासला रख कर लगाने से जड़ें मोटी होंगी। लक्ष्मी जी का कहना है कि वे ऐसी जगहों में ही रहती हैं अर्थात् अधिक खेती उपजेगी।

श्रावणेर पूरे भादरेर बारो। एर मध्ये यत पार (36)

पूरा सावन तथा भादों के बारह दिन तक धान लगाने का ठीक समय है। इस बीच में धान लगाने से अच्छी खेती होगी।

आषाढ़े काड़ान् नाम्के। श्रावणे काड़ान धान के।
भाद्दरे काड़ान शीषके। अश्विने काड़ान किस्के (37)

आषाढ़ में लगाने से सामान्य फल होगा, सावन में अधिक धान, भादों में केवल सुइयाँ निकल कर रह जायेंगी और कुंवार में लगाने से कुछ भी पैदा न होगा।

आषाढ़े पंचम दिने रोपण जे करे धान।
सुखे थाके कृषि बल, सकल आशा है सफल। (38)

आषाढ़ के पहले पाँच दिनों में ही धान लगा लेने से प्रचुर शस्य होगी और कृषकों की सारी इच्छाएँ पूरी होंगी तथा सुख मिलेगा।

धान की कटाई

थोड़ तिरेशे, फूला बिशे, घोड़ा मुखो तेरो दिन।
गुंजके ट्यॊंके भूझे रेखे, या दिगे यार आछे हीन (39)

धान के पेड़ लगाने के तीस दिन बाद उसमें बालें लग जाती हैं। इसके

बीस दिन बाद बालें झुक जाती हैं जिसके बाद बालें काटने के उपयुक्त हो जाती हैं। इस प्रकार से धान के पेड़ की उम्र गिन कर दो-एक दिन आगे-पीछे काटने से अच्छा होगा।

शीश देखे बिश दिन। काटते माड़ते दश दिन (40)

बालें आने के 20 दिन बाद धान के काटने का समय आता है और दस दिन बाद काट-माँड़ कर घर ले जाया जाता है।

आघने पौटी, पौषे छेउटी।
माघे नाड़ा, फाल्गुने फांडा (41)

अगहन में धान काटने से पूरा-पूरा धान मिलेगा, पूष में काटने से छः आने, माघ में काटने से नाममात्र और फाल्गुन में समस्त फसल झर कर नष्ट हो जायेगी।

जोतने के नियम

शोल चाखे तूलो, तार अर्धेक मूलो।
तार अर्धेक धान, बिना चाखे पान (42)

कपास के खेत को 16 बार जोतना चाहिए, मूली के खेत को 8 बार, धान के खेत को 4 बार किंतु पान की खेती में जुताई की आवश्यकता नहीं पड़ती।

खना डेके बले जान। रोदे धान, छायाय पान (43)

खना चिल्ला कर कहती है कि, 'जानो ! धूप से धान की वृद्धि और छाया से पान की वृद्धि होती है'।

एक आघने धान। तीन शाउने पान (44)

साल में धान एक ही बार होगा किंतु साल में पान के तीन घान टूटेंगे।

मूली और ईख

खना बले सुन सुन। शरतेर शेषे मूला बुन।

मूलार भुइँ तुला, कुशरेर भुइँ धुला (45)

खना कहती हैं, 'सुनो सुनो ! शरद् ऋतु के अंत में मूली बोओ। मूली के खेत की मिट्टी रुई की भाँति और ईख के खेत की मिट्टी धूल के समान मुलायम बनानी चाहिए'।

पान

पान पोते शाउने। खेले ना फुराय रावने (46)

सावन के महीने में पान की खेती करने से वह राक्षसों के भी खाए न चुकेगी।

खना डेके बलै यान, रौदे धान छायाय पान

खना कहती है कि धान धूप में तथा पान छाया में लहलहाते हैं।

सरसों, राई और कपास

घन सरिषा पातला राइ। नेगे नेगे कपास जाइ (47)

सरसों को घन, राई को पतला और कपास को दूर-दूर करके बोना चाहिए।

विभिन्न फसलें

खना बले चाषार पो। शरतेर शेषे सरिषा रो।
भाद्दरेर चारि आश्विनेर चारि,
कलाइ रोवे यत पारि (48)

खना कहती है कि ऐ किसान के बच्चो ! शरद् ऋतु के अंत में भादों के आखिरी चार दिनों में और कुंआर के पहले चार दिनों में (इन्हीं 8 दिनों में) सरसों बोना चाहिए।

आश्विनेर उनिश कार्तिकेर उनिश।

बाद दिये पारिस मटर कलाइ बुनिस (49)

कुंआर के अंतिम और कार्तिक के प्रथम उन्नीस दिनों को छोड़कर मटर और उड़द बोने पर अच्छी फसलें होंगी।

सरिषा बुने कलाइ मूँग। बुने बेड़ाउ चापड़े बुक (50)

सरसों और उड़द मूँग एकसाथ बोने से अच्छी फसलें होंगी जिससे तुम छाती निकाल कर चल सकोगे।

कोदाले मान, तिले हाल। कातेन फॉका, माघे काल (51)

मान को कुदाल से खोदो और तिल के लिए हल से जोतो। कातिक में सफेद तिल और माघ में काला तिल होगा।

हले फूल, काटो शोना। पाट काटिले लाभ दुगुना।
पौषर मध्ये धाने लाफा। खना बले दिव्गुणोर जाफा (52)

जब सन में फूल आएँ तो उसे काट लेना चाहिए। इसी तरह पाट (जूट) काटने से दुगुना लाभ होता है। खना कहती है, कि पूष के मध्य में धान काटने से दुगुना लाभ होता है। ऐसा न करने से हानि होगी।

तामाक बुन गुड़िये माटि, बीज पोंतो गुटि गुटि।
घन करे पुतो ना, पौषेर अधिक रेखो ना (53)

मिट्टी को महीन करके तंबाकू के बीज, एकसाथ कई, बोना चाहिए और बीजों को फासले पर बोओ और पूस के अंदर ही तंबाकू काट लेना चाहिए।

छाइये लाउ, उठाने झाल, कर वापु चाषार छाउयाल।
थाके यदि टाकार गो, चैत्र मसि भुट्टा रो (54)

जहाँ राख डाली जाए वहाँ लौकी का पौधा बोना चाहिए और ऑगन में मिर्च का पौधा। चैत्र के मास में भुट्टा बोओ तो काफी धन मिलेगा।

पटोल बुनले फाल्गुने, फल बाड़े दिव्गुणे।

शोन रे बापु चाषार बेटा, माटिर मध्ये वेले जेटा
ताते यदि बुनिस पटोल, तेइ तोर आशा फल (55)

फाल्गुन में परमल बोने से दुगुने फल लगेंगे, अतः ऐ किसान के लड़के सुन ! मिट्टियों में जो भुरभुरी हो तो उसमें परमल बोने से तुम्हारी आशा सफल होगी।

बले गेछे बरोहर पो, दशटि मास वेगुन रो।
चैत्र बैसाख दिवे वाद, इथे नाहि कोन बाद।
धरले पोका दिवे छाइ, एर चेये भाल उपाय नाइ।
माटि शुकाले ढालबे जल, सकल मासे पाबि फल (56)

बराह की पुत्रवधू खना कहती है कि चैत्र-बैसाख छोड़ कर बाकी दस महीने बैंगन लगा सकते हो। इनमें कोई भी महीना न छोड़ो। अगर पौधों में कीड़े लग जाएँ तो राख छोड़ दो क्योंकि इससे अच्छा कोई दूसरा उपाय नहीं। यदि पृथ्वी सूखने लगे तो पानी से सींचो जिससे सभी महीने बैंगन फले।

फाल्गुने ना रुले ओल, शेष हय गंडगोल।
छावार ओल चुलकाय मुख, किंतु ताहि नाहिक दुख (57)

यदि फाल्गुन में सूरन न बोया जाए तो गड़बड़ समझो। छाया में सूरन बड़े होते हैं किंतु गले में खाने से खसखसाहट होती है लेकिन दुख की बात नहीं।

कचुवने छड़ाले छाइ, खना बले तार संख्या नाइ।
नदीर धारे पुतले कचु, कचु है तीन हात उचू (58)

खना कहती है कि अरुई के खेत में राख छोड़ने से बड़ी पैदावार होगी। नदी की रेती में अरुई बोने से तीन-तीन हाथ लंबी अरुइयाँ होंगी।

बैसाखे ज्येष्ठ हलुद रोओ, दाबा पाशा फेलिये थोओ।
आषाढ़ श्रावणे निड़ाये नाटि, भाद्दरे निड़ाये करबे खाटि।
अन्य नियमे पुतले हलदि, पृथिवी बलेन ताते फलादि (59)

बैसाख-ज्येष्ठ में हल्दी बोओ। समय न गँवाओ। आषाढ़-सावन में उसे निराओ। भादों में और निरा दो तो बहुत अच्छा। दूसरे नियम से यदि हल्दी की बुआई की गई तो धरती कहती है कि मैं उसमें फल न लगने दूँगी।

उठान भरा लाउ शशा, खना बले लक्ष्मीर दशा (60)

लौकी, खीरा गृहस्थी के लिए उपयोगी हैं। जिसके घर लौकी, खीरा है वहाँ लक्ष्मी है। अतः जगह न हो तो आँगन में ही बोओ।

लाउ एर बल माछेर जल, धेन्यो माटी से झाल प्रबल (61)

लौकी में मछली का धोवन डालने से अच्छी फसल होती है और धनिया वाले खेत में मिर्च।

भादरे आश्विने ना रुये झाल,
ये चाषा घुमाये काटाय काल।
परेते कार्तिक आघन मासे,
बुडो गाछ क्षेते पूते आसे।
से गाछ मरिबे धरिये ओला,
पूरते ना हय झालेर झोला (62)

भादों और कुंवार में आलस्यवश यदि मिर्च का पौधा न काटा गया तो कार्तिक अगहन में काटने से कुछ न होगा क्योंकि ओले से पौधे नष्ट हो जाएंगे। अतः किसी काम में आलस्य न करें।

चाल भरा कुमड़ा पाता, लक्ष्मी बले आमि तथा (63)

जिसके घर में कुम्हड़े की लतर है वहाँ लक्ष्मी वास करती है।

शोन रे बापू चाषार पो, सुपारि बागे मान्दार रो।
मान्दार पाता पड़ले गोड़े, फल बाड़े चटपट करे।
गोये गोबर बाँसे माटी, अफला नारिकेल शिकड़ काटि।
ओल कुटि माने छाइ, एइ रुपे कृषि करगे भाइ (64)

ऐ किसान के लड़के सुन ! सुपारी के बाग में मदार का पेड़ बोना चाहिए। जड़ों में मदार के पत्ते पड़ने से सुपारी के फल जल्दी बढ़ते हैं। इसमें गोबर की खाद भी डालनी चाहिए। बाँस की जड़ों को मिट्टी से ढक देना चाहिए। जिस नारियल के पेड़ में फल न लगें उसकी थोड़ी जड़ काटने से फल लगेंगे। सूरन के पेड़ में कूड़ा-करकट डालना चाहिए और मीठे आलू में (शकरकंद) राख डालनी चाहिए।

नारिकेल बारो सुपारि आट, एर घन तखनि काट (65)

नारियल के पेड़ 12 हाथ पर और सुपारी के पेड़ 8 हाथ की दूरी पर होने चाहिए। इससे अधिक घने होने पर पेड़ काट डालने चाहिए।

दातार नारिकेल कृपणेर बांश, कमे ना बाड़े बारो मास।
फाल्गुने आगुन चैते माटि, तबे बांशेर परिपाटी।
शुन बाबू चाषार बेटा, बाँश झाड़े दाउ धानेर चिटा।
हाते हात छोय ना, मरा झाटि बय ना।
खना बले यखन चाय, तखन केन लय ना (66)

नारियल का पेड़ दानी तुल्य है जिसमें बारहों महीने फल लगते रहते हैं। अतः अधिक फल लगने से कुछ काट लेने पर वह बढ़ने लगते हैं। बाँस का पेड़ कंजूस की तरह है जिससे जितना कम काटिये उतना ही बढ़ता है। फाल्गुन में बाँस के नीचे के कूड़े-करकट में आग लगा देनी चाहिए। चैत में बाँस के चारों ओर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए तब पेड़ अच्छी तरह बढ़ेंगे। ऐ किसान के लड़को ! बाँस की जड़ों में धान [illegible] देने से जड़ें बढ़ेंगी और नए किल्ले फूटेंगे। नारियल के पत्तों को परस्पर छूना नहीं चाहिए। यदि कोई डाल सूख जाए तो काट दो, नहीं तो पेड़ खराब हो जाएगा। तब फल न लगेंगे।

नारिकेल गाछे लुने माटी, शीघ्र शीघ्र बांधे गुटी।
खना डाक दिये बले, चिटा दिले नारिकेल मूल।
गाछ है ताजा मोटा, शीघ्र शीघ्र धरे गोटा (67)

नारियल के पेड़ में लोना मिट्टी डालने से जड़ें मजबूत होती हैं। नारियल

की जड़ों में धान की भूसी देने से पेड़ मोटा-ताजा होगा और जल्दी ही फल लगेंगे।

बाँश बने बुनले आलू है गाछ बैडालू (68)

बाँस के जंगल में आलू बोने से पेड़ बढ़ते हैं और बड़े-बड़े आलू होते हैं।

कि कर स्वसुर खेटे, फाल्गुन ऐंटे पोंत केटे।
बेचे याबे झाड़के झाड़, कला बहते मांगबे घाड़।
यदि पोत फाल्गुने कला, तबे हवे मास फसला (69)

दामाद अपने ससुर से कहता है कि फाल्गुन में केले के पेड़ को तने से काट कर मिट्टी से खूब दबाकर लगाना चाहिए। तब पेड़ से गुच्छे के गुच्छे लटकेंगे और उसके वजन को पेड़ नहीं सहन कर पाएगा और प्रत्येक महीने केले लगेंगे।

सात हाते तिन बिधते, कला लागावे माये पुते।
लागिये कला केटना पात, तातेइ कापड तातेइ भात (70)

साथ हाथ फासले पर और तीन बलिस्त गहराई पर एक बड़ा केला और एक छोटा का पेड़ (बीज) लगाओ। उसके पत्ते न काटो। ऐसा करने से उसी से कपड़े और भोजन मिलेगा।

डाक छाड़े बले रावण, कला लगावे आषाढ़ श्रावण।
तिने शत षाट कल रूये, थाक गृहस्थ धरे शुये।
रूये कला ना काट पात, तातेइ हवे कापड़ भात (71)

आषाढ़-सावन में केले का पेड़ लगाओ किंतु पत्ते न काटो। 360 केले के पेड़ जो लगा लेगा उसे अन्न-वस्त्र की चिंता न रहेगी।

पटोल

शुन बापू चार बार बेटा, बाँश झाडे दित्त धानेर चिटो

चिटो दिले बाँशेर गोड़े, दुइ कूड़ा भुई बेडबे झाड़े

हे कृषक पुत्र सुनो ! बाँस की झाड़ में धान की गेरुई डालो। यदि इसे झाड़ की जड़ के पास डालोगे तो वह दो कुड (174 वर्ग गज) जमीन में फैल जायेगा।

शुन रे बापू चारवार बेटा, माटिर मध्ये बेले येटा
ताते यदि बूनिस पटोल, तातेइ तोर आशार सुफल

हे कृषकपुत्र ! यदि पटोल को बलुही जमीन में बोओगे तो तुम्हारी आशा पूरी होगी।

कपास

कापास बले कोटाभाइ
ज्ञाति पानि येन ना पाइ

कपास के बीजों को एक-एक कुदान पर और जूट को उनके पास मत लगाओ नहीं तो कपास के पौधे जूट के खेत के पानी के संपर्क में आकर मर जाएँगे।

□

अध्याय 13

घाघ तथा भड्डरी का योगदान

लोक में घाघ तथा भड्डरी के नाम अत्यधिक विख्यात हैं। घाघ-भड्डरी अथवा डाक-भड्डरी ने राजस्थान से लेकर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बंगाल, बिहार तथा असम के किसानों के बीच कृषि विषयक ज्ञान को चाहे जिस भाषा में प्रसारित किया हो किंतु कालांतर में वह कहावतों और सूक्तियों के रूप में ही बचा रहा है। अवधी तथा राजस्थानी बोलियों में उनकी कहावतों के संकलन भी उपलब्ध हैं।

घाघ और भड्डरी पर हिंदी में पहली पुस्तक पं. रामनरेश त्रिपाठी ने 1931 ई. में लिखी। उसके बाद 1941 ई. तथा 1946 ई. में क्रमशः श्रीकृष्ण शुक्ल तथा पं. शीतला प्रसाद तिवारी ने पुस्तकें लिखीं।

डाक-भड्डरी तथा घाघ कब और कहाँ पैदा हुए, इसके बारे में काफी मतभेद हैं। असम वाले डाक कवि तथा भड्डरी को अपने यहाँ पैदा हुआ मानते हैं और राजस्थान वाले अपने यहाँ। उत्तर प्रदेश में डाक के बजाय घाघ का नाम अधिक प्रचलित है।

पं. रामनरेश त्रिपाठी ने घाघ तथा भड्डरी दोनों को 16 वीं सदी में विद्यमान बताया है। उन्होंने लिखा है कि—

"घाघ के संबंध में शिवसिंह सरोज का मत है कि ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे जो अंतर्वेद में रहते थे और इनका जन्म संवत् 1753 में हुआ था। मिश्र बंधुओं ने घाघ का जन्म काल संवत् 1753 तथा कविता काल संवत् 1780 माना है। "हिंदी शब्द सागर" में घाघ के गोंडानिवासी चतुर अनुभवी व्यक्ति कहा गया है। पीर मुहम्मद मुनिस का मत है कि शब्दावली को देखते हुए घाघ को चंपारन और मुजफ़फरपुर जिले के सरहदपुर औरैया मठ या

बैरगनिया और कुड़वा चैनपुर के समीप के किसी गाँव का निवासी माना जा सकता है। बी.एन. मेहता घाघ को अहीर मानते हैं। मुकुंदलाल ने घाघ को कानपुर जिले के अंतर्गत किसी गाँव में संवत् 1753 में उत्पन्न माना है। कुछ लोग इन्हें फतेहपुर जिले का और कुछ छपरा जिले का निवासी बताते हैं। छपरा वालों का कथन है कि घाघ की पुत्रवधू कन्नौज की थी और अंत में घाघ को भी कन्नौज में बसना पड़ा।''

पं. रामनरेश त्रिपाठी ने घाघ को कन्नौज जिले के चौरी सराय ग्राम को दुबे ब्राह्मण बताया है। "उनका जन्म सं. 1753 में हुआ था। घाघ पहले हुमायूँ के राज्यकाल में गंगापार रहते थे। इन्हें पहले हुमायूँ के दरबार में रहने और फिर अकबर का प्रीतिभाजन बनने का अवसर मिला। चूँकि अकबर का काल 1542 से 1605 है अतः घाघ का भी यही समय मान लेना चाहिए।"

बिहार में घाघ के कई नाम प्रचलित हैं — डाक, भाड, खोना आदि। भाड ही भड्डरी है। मारवाड़ में डाक के लिए डंक नाम अधिक प्रचलित है किंतु मारवाड़ की भड्डरी भंगिन जाति की स्त्री थी।

अगरचंद नाहटा ने लिखा है कि प्रांतीय भेद से डाक को घाघ कहा जाने लगा। वे डाक और भड्डरी का समय चौदहवीं सदी के आस-पास मानते हैं।

डी.सी. सेन ने डाक और खना की कहावतों का काल दसवीं सदी बताया है। वे डाक को ग्वाला बताते हैं।

डॉ. उमेश मिश्र (हिंदुस्तानी 1934) ने मैथिली साहित्य के संदर्भ में डाक को अहीर बताया है और उनका काल पंद्रहवी से अठारवीं सदी के बीच निश्चित किया है।

घाघ की वाणी

कृषि सर्वोत्तम है

कृषिवेत्ता घाघ ने अपने समय के कृषकों में यह प्रेरणा भरी कि सभी व्यवसायों से कृषि उत्तम है और जो खेती के साथ-साथ व्यापार भी करना

चाहता है उसकी दुर्गति हो जाती है। उत्तम खेती तो वही है जिसमें किसान स्वयं जोतता है। नीचे लिखी कहावतों से यह स्पष्ट हो जाता है—

उत्तम खेती, मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी, भीख निदान।

खेती करै बनिज को धावै, ऐसा डूबै थाह न पावै।

उत्तम खेती जो हर गहा, मध्यम खेती तो संग रहा।

जो हल जोतै खेती वाकी, और नहीं तो जाकी ताकी।

उत्तम खेती आप सेती, मध्यम खेती भाई खेती।

नौकरी खेती बिगड़ गई, तो बलाय सेती।।

अधिक परिश्रमी 'कुरमी' जाति के लिए उन्होंने लिखा है—

"भली जाति कुरमिन की खुरपी हाथ,

अपना खेत निरावै, पिय के साथ।"

खादों का महत्व

घाघ ने भारतीय कृषि की समुन्नति में खादों की महत्ता को स्वीकार करते हुए जो योग दिया वह अनिर्वचनीय है। हमारे किसानों की दरिद्रता, असंयम तथा अशिक्षा की दशा में घाघ की ही कहावतें उन्हें आधार तुल्य बनती दिखती हैं। गोबर, कूड़ा, हड्डी तथा सनई-नील आदि की खादों का विस्तृत वर्णन कर और उनके उपयोगों को जनता में प्रसारित कर घाघ ने नए युग का सूत्रपात उसी प्रकार किया जिस प्रकार सन् 1840 ई. में यूरोप में सर बैरन लीबिग ने कृत्रिम खादों के सूत्रपात से किया था।

1. खाद पड़े तो खेत, नहीं तो कूड़ा रेत।

2. खाद देय तो खेती होई,
नहीं तो रही नदी की रेती।

3. खेती करै खाद से भरै,
सौ मन कोठिला में वह धरै।

4. खेत पांसा जब न किसान, उसके घरे दरिद्र समान।

खाद का समय

किस समय खेतों में खाद डालनी चाहिए, इसको घाघ ने बताया। आज भी हमारे किसान उसी परंपरा में चल रहे हैं।

1. खाद असाढ़ खेत मा डालै, तब फिर खूबहिं दाना पालै।

2. अषाढ़ में खाद खेत में जावै, तब भर मूठी दाना पावै।

खादों के भिन्न रूप

जितने भी प्रकार की जीवांश खादें संभव हो सकती थीं, घाघ ने वर्णित कीं। यथा

मूत्र – "जेहि क्यारिन में मूतै ढोर सब खेतन से वह सिरमौर।
राखी, गोबर – गोबर राखी पाती सड़ै तब खेती में दाना पड़े।
जेकरे खेत पड़ा न गोबर, उस किसान को जानों दूबर।
चकौड़ा, रूस – गोबर, चोकर, चकबर, रूसा, इसको छोड़ै होय न भूसा।
सनई – सन के डंठल खेत छिटावै, तिनसे लाभ चौगुनों पावै।
नीम की खली-मैला – गोबर मैला, नीम की नली, वासे खेती दूनी फली।
गोबर की पाँस – जामे डालो गोबर खाद, तब देखो खेती का स्वाद।

घाघ ने हड्डी के चूरे द्वारा फॉस्फेटीय खादों का भी उल्लेख किया है। यथा

वही किसानों में है पूरा, जो छोड़े हड्डी का चूरा।

गहरी जोत

घाघ ने खादों के साथ ही साथ खेतों की गहरी जुताई पर भी ध्यान दिया।

(आज ट्रैक्टरों का उपयोग इसी बुनियाद पर किया जा रहा है किंतु ध्यान रहे इस प्रकार की जुताई से क्षणिक लाभ तो हो जाता है, क्योंकि प्रारंभ में नीचे की पर्तों के खनिज ऊपर आकर फसलों के भोज्य-पदार्थों की पूर्ति करते हैं किंतु बाद में जीवांश की क्षति हो जाने के कारण भूमि सदा के लिए अनुर्वर हो जाती है। अतः यह कहना कि घाघ की सभी शिक्षाएँ ग्राह्य हैं ऐसा नहीं किंतु हमें सोच-विचार कर आगे बढ़ना होगा। अब वैज्ञानिक खोजों को भी ध्यान में रख कर खेती आगे बढ़ानी होगी।)

1. *बीज लगे फल अच्छा देत, जितना गहरा जोतै खेत।*
2. *छोटी नसी, धरती हँसी। हर लगा पाताल, तो टूट गया फाल।*
3. *जोत गहराई धूरि उधिरावै, घास-दूब कुछ रहन न पावै।*
4. *छोड़ै खाद, जोत गहराई, तब खेती का मजा दिखाई।*
5. *काह होय बहु बाहे, जोता न जाए थाहे।*
6. *बाह न कीना मोटा, बीज बतावैं खोटा।*
7. *नौ नसी एक कसी।*

(नसी का अर्थ छोटी फाल वाला हल और कसी का अर्थ है फावड़े से खोदना।)

मेड़ बाँधना

बाँधों की उपयोगिता यही है कि वे भूमि के पोषक तत्वों को पानी में बह जाने से रोकें और साथ ही वर्षा के पानी को रोक कर पानी की कमी को दूर करें। घाघ ने बाँधों, क्यारियों या मेड़ों के बाँधने पर पर्याप्त प्रकाश डाला है:

1. *सौ की जोत पचासे जोतै, पै ऊँच कै बाँधे बारी।*
   जो पचास का सौ न तुलै, तो देव घाघ का गारी।

2. मेढ़ बाँध दस जोतन दे, दस मन बीघा मोसे ले।
3. थोड़ा जोतै, बहुत हैंगावे, ऊँच न बाँधे आड़।
   ऊँचे पै खेती करै, पैदा होवै भाड़।।
4. तोड़ दीन्ह क्यारी, खेत का उजारी।
5. जब बरसै तो बाँधे क्यारी, बड़ा किसान जो हाथ कुदारी।

फसलों के बोने का समय, बीज की मात्रा आदि

घाघ ने फसलों के बोने का उचित समय, बीज की मात्रा तथा खेतों की बनाई आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला है। इन सबमें वैज्ञानिक रहस्य तो है ही, किसानों को बड़ा भारी सहारा भी मिलता है।

समय

1. जो न बाहे अषाढ़ एक बार, फिर क्या बाहे बारंबार।
2. तेरह कातिक तीन अषाढ़, जो चूका तो बिया न भार।
3. पुष्य पुनर्वसु बोवै धान, अश्लेषा जुन्हरी परमान।
4. कातिक बोवै अगहन भरै, ताको हाकिम फिर का करै।
5. आगे गेहूँ पाछे धान, उसको कहिए बड़ा किसान।
6. अगहन बवा, कहूँ मन, कहूँ सवा।
7. आगे की खेती आगे-आगे, पीछे की खेती भागै जागे।

बीज की मात्रा

जब गेहूँ बोवै पाँच पसेर, मअर बीघा तीसै सेर।
बोवै चना पसेरी तीन, तीन बीघा जुन्हरी कीन।
दो सेर मेथी, अरहर, मास, डेढ़ सेर बीघा बीज कपास।
पाँच पसेरी बीघा धान, तीन पसेरी जड़हन मान।
डेढ़ सेर बजरा-बजरी, सवाँ, कोदों काकुन सोया बवा।
दो सेर बीघा सवाँ जान, तिल्ली सरसों अंजुरी मान।

इहि विधि से जब बुवै किसान, दूने लाभ की खेती मान।

बीज की बुवाई

सन घनों, बन बिगरा, मेंढक फंदे ज्वार।
पेड़-पेड़ पर बाजरा, करै दरिद्दर पार
छिद्दो भला जवा चना, छिद्दो भली कपास।
जिनकी छिद्दो ऊखड़ी, उनकी छोड़ो आस।
हिरन छलांगन काकड़ी, पग पग रहे कपास।
जाय कहो किसान से, बोवै घनी उखास।
कदम-कदम पर बाजरा, मेघ कुदौनी ज्वार।
ऐसा बोवै जो कोई, घर-घर भरै कुठार।

खेतों की बनाई

1. खेत बेपनियाँ जोतो तब, ऊपर कुवाँ खुदाओ जब।
2. कच्चा खेत न जोतै कोई, नाहीं बीज न अंकुरे कोई।
3. मैदे गेहूँ, ढेले चना।
4. जो ढेले दे तोड़ मरोड़, ताको कोठिला दूँगी फोर।
   जो करेगा मेरी कान, ताके कोठिला आवै न हानि।

दालों की खेती का महत्व

आज संपूर्ण यूरोप-अमेरिका दालों की ही खेती से नाइट्रोजनीय संतुलन प्राप्त कर रहा है। हमारे देश में घाघ जैसे कृषि विशारदों का भी लक्ष्य भूमि की उर्वरता बढ़ाने के लिए दालों की खेती की ओर रहा होगा। ये दालें अपनी जड़ों में विशेष प्रकार के जीवाणुओं को आश्रय देती हैं जो वायुमंडल के नाइट्रोजन को ग्रहण कर खेत की नाइट्रोजनीय स्थिति को सुधार देती हैं और

आगे की फसलों के लिए वे खेत उपजाऊ बन जाते हैं। इससे खाद डालने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। वनस्पति-विज्ञान के अनुसार उड़द, मूँग, मोथी, अरहर, मटर, नील तथा सन मुख्य दलहनी फसलें हैं जो कृषि में प्रयुक्त होती हैं।

सनई

1. सन के डंठल खेत छिटावै, तिनते लाभ चौगुनो पावै।

2. सनई बोवै, सनई काट, सनई सारे खेत मझार।
उल्टे-पुल्टे दोनों जोते, बदि दीजै गल्ला कौ भार।

नील

1. अब्बर खेत जो झूठी खाय, सड़े बहुत तो बहुत मोटाय।

2. बेश्या बिटिया नील है, बन साँवा पुत जान।
बो आवै सब घर भरै, दरब लुटावन आन।

(अब्बर = नील, बन = कपास)

मोथी

उड़द-मोथी की खेती करिहौ,
कुडिया तोड़ ऊसर में धरिहौ।

इसी प्रकार घाघ ने बहुत सी नकदी फसलों पर जोर देते हुए कपास तथा ईख की खेती को बहुत महत्व दिया। उस समय तमाम कंदों की खेती होती थी जिसका भी वर्णन मिलता है।

गाजर गंजी, मूरी, तीनो बोवै दूरी।
या तो बोओ कपास औ ईख
ना तो खाओ माँग के भीख।
जो तू भूखा माल का,
तो ईख कर ले नील का।

फसलों के हेर-फेर

उर्वरता को स्थिर रखने का सबसे सुगम ढंग है कि उसी खेत में एक ही फसल को लगातार न बोया जाए। घाघ ने इस बात को भली भाँति पहचान कर फसलों के अदलने-बदलने पर जोर दिया।

1. साठी में साठी करै बाड़ी में बाड़ी।
ईख में जो धान बोवै, फूकों वाकी दाढ़ी।

2. बोओ गेहूँ, काट कपास,
न हो ढेला न हो घास।

3. बाड़ी में बाड़ी करैं, करैं ईख में ईख।
वे घर यों ही जावेंगे, सुनै पराई सीख।

कंपोस्ट

पाँस या कंपोस्ट बनाने में या तो गड्ढों का प्रयोग किया जाता है या सीधे खेत में ही जैव पदार्थों को सड़ने दिया जाता है। घाघ ने दोनों प्रकार की कंपोस्ट के बारे में कहा है

1. गोबर, मैला, पाती सड़ै, तब खेती में दाना पड़ै।

2. गोबर, चोकर, चकवड़, रूसा, इनको छोड़ो होय न भूसा।

3. कुडहल राखो खाद पटाय, तब धानों के बीज दिखाय।

4. सनई बोवै सनई काट, सनई सारे खेत मझार।
उल्टे-पुल्टे दोनों जोतै, बदि दीजै गल्ला का भार।

5.खेत पाँसा जब न किसान, उसके घरे दरिद्र समान!

6. अब्बर खेती जो जूठी खाय, सड़े बहुत तो बहुत मोटाय।

सिंचाई पर बल

पानी के बिना फसलों का होना असंभव है, अतः पानी चाहे वर्षा का हो या कुआँ तालाब का, पानी की आवश्यकता फसलों को होती है।

1. साठी होवै साठी दिना, यदि पानी बरसै रात दिना।

2. सभी किसानी हेठी, अगहनिया पानी जेठी।

3. धान पान उखेरा, तीनों पानी के चेरा।

4. खेत बेपनिया जोतो तब, ऊपर कुआँ खोदाओ जब।

5. गेहूँ भवा काहे? अषाढ़ के दो बाहे।

6. खूब जोतै औ नावै खाद, तब देखो गेहूँ का स्वाद।

7. गेहूँ भवा काहे? सोरह बाहें नौ गज थाहे।
गेहूँ बाहे से, चना पलोये से, धान गाहे से,
मक्की निराये से, ऊख कसाये से।

ज्योतिष ज्ञान (वर्षा की भविष्यवाणी)

घाघ ज्योतिषी भी थे। उस समय वर्षा-ज्ञान के लिए ज्योतिष की आवश्यकता भी थी। अपने वर्षा-ज्ञान के कारण घाघ, निस्संदेह, एक आदर्श कृषिवेत्ता हो गए हैं।

1. जै दिन भादों बहै पछार, तै दिन पूष मा पड़ै तुषार।

2. फागुन मास बहै पुरवाई, तब गेहूँ मा गेरुई[1] धाई।

3. चना में सरदी बहुत समाई, ताको जात गधैला[2] खाई।

4. माघै पूस बहै पुरवाई, तब सरसों का माहू[3] खाई।

5. वायु चलेगी दक्खिना, माँड़ कहाँ से चक्खना।

6. कुंभै आवै, मीनै जाए, पेड़ी लागै, पालौ खाय।

7. गेहूँ गेरुई गंधी[1] धान, बिना अन्न के मरा किसान।

8. नीचे ओद ऊपर बदराई, घाघ कहै गेरुई अब खाई।

---

1. गेहूँ तथा धान की पत्तियों में लाल रंग की चित्तियाँ पड़ना, अन्नों का एक रोग।
2. गए कीड़ा।
3. सरसों-मूली को नष्ट करने वाला कीड़ा।

उपरोक्त से वर्षा ज्ञान ही नहीं अपितु फसलों में लगने वाले विभिन्न कीटों और रोगों का वर्णन भी मिलता है। आज विदेशों में इन रोगों के आक्रमण रोकने के लिए कीटनाशक रसायनों का अत्यधिक प्रचार है और इस तरह रोकथाम करने के पश्चात् उपजों में काफी वृद्धि संभव है। हमारे देश में इन रोगों की पहचान या आशंका तो होती आई है पर घाघ उनका उपचार नहीं बता पाए हैं।

कृषि यंत्र तथा बैलों का ज्ञान

घाघ ने बैल के गुणों का वर्णन विस्तार में दिया है। यह भली-भाँति ज्ञात है कि कृषि के मूल में बैल ही है, अतः उसके गुणों की जानकारी आवश्यक है।

1. वह किसान है पातर, जो बरदा राखे गादर।

2. दस हल राव आठ हल राना, चार हलों का बड़ा किसाना।

3. कीकर पाथा सिरस हल, हरियाने का बैल।
लोधा डाल लगाय कै, घर पर चौपड़ खेल।

तात्पर्य यह है बैलों की संख्या से किसान की श्रेणी निर्धारित होती है।

कृषि यंत्रों में हल ही आवश्यक है जिसके लिए लोध्र का वृक्ष लगा कर किसान निश्चिंत रह सकता है।

चकबंदी तथा सहाकारी आंदोलन का ज्ञान

घाघ को किसानों की संघ शक्ति पर विश्वास था, इसीलिए उसने लिखा कि

एकसर खेती एकसर मार, घाघ कहैं ये सदहूँ हार।

किसानों को खेतों की चकवट (चकबंदी) से लाभ होता है क्योंकि किसान आसानी के उनकी जुताई तथा रखवाली कर सकता है।

---

1. धान में लगने वाला दुर्गंध युक्त कीट

1. आप पास रबी, बीच में खरीफ।
नोन मिर्च डाल के, खा गया हरीफ।

2. पाही जोतै औ घर जाए,
तेहि गिरहस्तै भवानी खाए।

इसीलिए घाघ ने अंत में आदर्श किसान की आवश्यकताओं का निम्नलिखित प्रकार से चित्रण किया –

बीघा बायर होय, बाँध जो होय बँधाए,
भरा भुसौला होय, बबुर जो होए बुवाए।
बढ़ई बसे समीप, बसूला धार धराए,
पुरखिन होय सुजान, बिया बोउनिहा बनाए।
बरद बगौधा होय, बदरिया चतुर सुहाए,
बेटवा होय सपूत कहे बिनु करै.करायै।

यही नहीं –

भुइयाँ खेड़े, हर होय चार, घर होय गिहथिन, गऊ दुधार।
अरहर कि दाल जड़हन का भात, गागल निबुआ और घिउ तात।
खांड दही जो घर में होय, बाँके नैन परोसै जोय।
कहै घाघ तब सबही झूठा, उहाँ छाड़ि इँहवै बैकुंठा।।

ऊसरों का विस्तार

घाघ ने अपनी दो चार कहावतों में उस समय विस्तार करने वाले ऊसरों का भी वर्णन किया है। उनकी अनुर्वरता तथा उपेक्षा साफ-साफ ज्ञात होती है।

1. खेत न जोतै राड़ी[1], न भैंस बेसाहै[2] पाड़ी[3]
2. सटका[4] माघ पटकिगा[5] ऊसर, दूध भात मा परिगा मूसर।

1. ऊसर 2. खरीदना, 3. अनब्याई, 4. पानी न बरसना, 5. सूख जाना

भड्डरी का परिचय

भड्डरी पुरुषनाम नहीं अपितु स्त्रीनाम है। कुछ लोग घाघभड्डरी को एक मानते हैं। वैसे भड्डली डाक या घाघ की पत्नी ही रही होगी। 'राजस्थान भारती' के प्रथम अंक (1946) में "राजस्थानी की वर्षा संबंधी कहावतें" लेख में सरस्वती कुमार ने घाघ-भड्डरी के राजस्थान निवासी होने के पक्ष में दो प्रमाण दिए हैं

(1) राजस्थान में 'डाकोत' नामक एक याचक जाति है। इसके लोग अपने पास पत्रा रखते हैं। तिथि, वार आदि बताकर राशि आदि का शुभाशुभ फल, दिशाशूल आदि ज्योतिष की छोटी मोटी बातें भी सुनाते हैं। डाकोत शब्द को वे डाक पुत्र का अपभ्रंश बताते हैं। डाकोत राजस्थान के बाहर नहीं पाए जाते अतः डाक अवश्य ही राजस्थान निवासी था।

(2) डाक की स्त्री का नाम भड्डली था, जिसे भडली, भडरी, भड्डरी आदि रूपों में पुकारा गया है। डाक की बहुत सी उक्तियाँ भड्डली को संबोधित करके लिखी गई हैं और अनेक कहावतों में भड्डली नाम आया है – "डक्क कहै सुण भड्डली, जल बिन प्रिथमी जोयै।" अथवा "तो अषाढ़ में भड्डली बरखा चोखी होय।"

श्री अगरचंद नाहटा ने (नवनीत दिसंबर 1978, पृष्ठ 67–70) लिखा है कि घाघ वास्तव में डाक के प्रांतीय भेद से ही प्रचलित हुआ नामांतर है। डाक का पुराना अपभ्रंश नाम 'डक' मिलता है। वह ब्राह्मण था और उसने अपनी पत्नी भड्डली को संबोधित करके वर्षा आदि विषयों पर दोहे आदि पद्य समय-समय पर बनाए। डाक और भड्डली (भड्डरी) का समय चौदहवीं सदी से पीछे का नहीं है। नाहटाजी को आचार्य लोकहित सूरि लिखित ज्योतिष संग्रह (सं- 1429) में भड्डली के नामोल्लेख वाले पाँच पद्य मिले हैं। इनकी भाषा अपभ्रंश है, अतः उनकी रचना दसवीं-बारहवीं सदी में हुई होगी। ये पद्य हैं –

1. अक्कि फट्टइ सोम जल बालु अंगारउ कलहणउ
थावरिमइलउ होइ
बुह गुरु सुक्क विवज्जियउ सो कप्प पहिरेइ

इय जाणिज्जइ भड्डली बहुया दुक्ख सहेइ (91)

2. चित्तह मासह भड्डली जा पहिली तिहि होइ
सो जोइज्जहु सव्वहिणी कउणिहिं वारिहिं होइ (54)

3. सणि अंगारउ अन्नुरवि ति थाइउ नक्खत्तु
भद्दह सहियउ भड्डली एहुति पुक्खक वुत्तु (83)

4. पोस माहिण डमरू दक्खइ जिट्ठेण विनइ भइ आसोय
असुहांइ भंजइं
आसाढहं सावणहउग्ग मंतु दुब्भिक्ख सिक्खइ
भद्दवडइबुह उग्गियउ भद्दसयाइं करेइ
मेइणि हरिया भद्दली घणु बरसंतु धरेइ (22)

5. फग्गि उग्गिउ करइ दुब्भिक्खबहुतारउ
भड्ड चितमासि बलिराउ तुल्लउ
वइसाहह उग्गियउ चउपायहं सो नाहि भल्लउ
कत्तिमासह उग्गियउ तिल विरहियहं विणासु
मग्गसिरहं बुहु उग्गियउ खउ चोरहं कप्पासु (1)

श्री अगर चंद नाहटा ने इसी लेख में एक जैन विद्वान लिखित 'मेघमाला' में प्राप्त तीन पद्य दिए हैं जो सिद्ध करते हैं कि डाक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम भड्डली था और डाक ने भड्डली से ज्योतिष विषयक पद्य कहे थे –

तिथसिदं नदिदं वय पणमितु जिणेसरं महावीरं।
वुच्छामिमेघमालां जे कहीयं जिणवरि देणं।।
गगनस्यच्छल ग्राही पुरा डाकाभिधो द्रिजः।
भडल्या निज भार्यायाः पुरोज्योतिषमब्रवीत।।
भडल्याग्रे पुरा प्रोक्तं ज्योतिर्ज्ञानमनेकधा।
योवगच्छति मेधावी प्राप्नोति यशोधनम्।।

भड्डरी के विषय में बी.एन. मेहता ने एक किवंदंती का उल्लेख किया है –

"एक समय जब ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर तीर्थ यात्रा कर रहे थे तो उनको मालूम हुआ कि अमुक दिन का उत्पन्न बच्चा बहुत बड़ा ज्योतिष पंडित होगा, अतः वे उज्जैन जाने लगे। रास्ते में उन्होंने एक गड़रिये की कन्या से अपना विवाह किया और उससे जो पुत्र हुआ उसका नाम भड्डरी हुआ। भड्डरी को भड्डली भी कहते हैं।"

राजस्थान में भड्डरी की कहावतें प्रचलित हैं जिससे उनके ज्योतिष ज्ञान का पता चलता है। उन्होंने वर्षा तथा सूखे के विषय में अनेक महत्वपूर्ण बातें कही हैं। उनकी कुछ राजस्थानी कहावतों में डंक और भड्डली नाम पाए जाते हैं। उनकी कहावतें अवधी तथा भोजपुरी क्षेत्रों में भी प्रचलित हैं, जिनकी भाषा स्थान परिवर्तन के हिसाब से अवधी या भोजपुरी हो गई है।

राजस्थानी में भड्डरी की अकाल संबंधी कहावतें

परभाते मेह डंबरा, साजेसीला बाय
डंक कहे हे भडली, काला तव सुझाव

सुबह के समय बादलों का उड़ना तथा शाम के समय ठंडी हवा चलना, काल (अकाल) की चेतावनी है।

परभाते डंबरा, दोफारा तपंत
रात तारा निरमला, चेला करो गछंत।

सुबह के समय उड़ते बादल, दोपहर को तेज गर्मी, रात के समय आकाश में बादलों का अभाव और तेजी से चमकते तारे संकेत देते हैं कि अपना स्थान छोड़ कर किसी दूसरे देश में जाने का समय आ गया है।

चैतमास उजाले पेख, नव दिन बीज लुकाई रख
आठम नम नीरतं कर जोय, जा बसे जा दुरमख होय।

चैत मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम नौ दिनों में आठवें तथा नवें दिन आकाश साफ रहना चाहिए। यदि इन दिनों वर्षा हो तो यह स्पष्ट ही अकाल की चेतावनी है।

सावण पहली पंचमी जो बाजे बहु बाय

काल पड़े सहु देस में, मिनख मिनख खाय।

यदि सावन में पाँचवे दिन तेज हवा चले तो उस भूभाग में अकाल अवश्य पड़ेगा और तब मानव मानव को खा जावेगा।

पहली रोपण जल हरे, बीजी बहोत्तर खाय।
तीजी रोहण तिण हरै, चौथी समंदर जाय।

यदि रोहिणी के पहले भाग (2 मई से 5 जून) में वर्षा हो तो भयंकर अकाल पड़े, यदि दूसरे भाग में हो तो मानसून 72 दिन देरी से आए। तीसरे भाग में वर्षा हो तो घास भी नहीं उगे और रोहिणी के चौथे भाग में वर्षा हो तो समुद्र का पानी भी नीचे चला जाए।

माह भंगल जेड रवी, भादरवे सन होय
डंक कहे हे भडली विरला जीवो कोय

यदि माघ में पाँच भंगल पड़ें, जेठ में पाँच रविवार पड़ें और भादो में पाँच शनि पड़ें तो उस वर्ष भीषण अकाल पड़े।

आसोजाँ रा मेहड़ा, दोय बात बिनास।
बोरडियाँ बोर नहिं, बिणयाँ नहीं कपास।।

आश्विन में यदि वर्षा हो तो दो प्रकार की हानि होगी- न तो बेर की झाड़ियों में बेर लगेंगे और न कपास में टेर।

काती रो मेह, कटक बराबर।

कार्तिक की वर्षा सेना के समान हानिकारक है।

दवै मूसा दवै कातरा, दवै टीड़ी दवै ताव।

दोयाँ री बादी जल हरै दवै बीसर दवै बाव।।

यदि मृगशिरा के प्रथम दो दिन हवा न चले तो चूहे पैदा हों। तीसरे चौथे दिन हवा न चलने से गुबरीले, पाँचवे छठवें दिन न चलने से टीड़ी, और सातवें आठवें दिन न चलने से ज्वर फैलेगा। नवें दसवें दिन न चलने से कम वर्षा,

ग्यारहवें दिन जहरीले कीड़े और तेरहवें-चौदहवें दिन हवा न चलने से खूब आँधी आती है।

एक आदरयो हाथ लग जाए तो पाछे तो जाट राजी।

आर्द्रा में एक बार भी वर्षा हो जाने पर जाट (किसान) प्रसन्न हो जाता है।

रार करो तो बोलो आड़ा। कृषि करो तो रखो गाड़ा।।

यदि झगड़ा करना हो तो ऐंडी-बैंडी बातें करो, यदि खेती करनी है तो गाड़ी रखो।

जो तेरे कंता धन घना। गाड़ी कर ले दे।।

जो तेरे कंता धन नहीं। कालर बाड़ी बो।।

यदि धन हो तो गाड़ी अवश्य लें और यदि धन नहीं तो कपास बोना चाहिए।

भगवान् पर आश्रित कृषकों को वर्षा की सूचना, ओलों की पूर्व पहचान तथा अकाल की भविष्यवाणियाँ उन्हें जागृत करती रहती हैं। इस दिशा में भड्डरी के हम कृतज्ञ हैं क्योंकि हमारी सरकार की मौसमी सूचनाएँ किसानों तक कम ही पहुँच पाती हैं। यों तो चौमासा वर्षा के लिए विख्यात है किंतु अगहन-पूस में भी खेती को पानी की आवश्यकता होती है, अतः यदि फसल को उक्त समय में पानी न मिला तो मानों कृषकों पर आपत्ति आ गई। साथ ही यदि माघ या फागुन में बदली या पानी या पत्थर पड़ा तो कृषि नष्ट हो जाती है, गेरुई लग सकती है और अकाल पड़ सकता है। इन्हीं अकाल वर्षा की संभावनाओं की भविष्यवाणी करने में भड्डरी पटु थी।

हिंदी में प्राप्त कहावतें

वर्षा का योग

1. *जेठ मास जो तपै निराशा, तब जानो बरसा की आशा।*
2. *उतरे जेठ जो बोलै दादुर, कहैं भड्डरी बरसै बादर।*

3. असाढ़ी पूनो दिना, गाज बीज बरसंत।
नासै लच्छन काल का, आनंद मानो संत।।
4. सावन केरे प्रथम दिन, उगत न दीखै भानु।
चार महीना बरसै पानी, याको है परमान।।
5. भादौं की छठ चाँदनी जो अनुराधा होइ।
ऊबड़-खाबड़ बोय दे, अन्न घनेरा होय।।
6. कल से पानी गरम है, चिरिया न्हावै धूर।
अंडा ले चींटी चढ़ै, तो वर्षा भरपूर।
7. शुक्करवारी बादरी, रही सनीचर छाय।
तो यों भासै भड्डरी, बिन बरसे ना जाए।

अकाल

1. दिन को बादर, रात में चंदर, बहै पुरवैया भद्दर-भद्दर।
कहै भड्डरी बरसा नाही, सिगरी खेती जाइ सुखाही।
2. जेठ बदी दशमी दिना, जो शनिवासर होइ।
पानी होय न धरनि पर, बिरला जीवै कोइ।।
मौन अमावस मूल बिन, रोहिनि बिन अकतीज।
सावन सरवन ना मिलै, वृथा बखेरो बीज।।

□

अध्याय 14

मुगलकालीन कृषि

काल परिवर्तन के साथ ही भारतीय कृषि की प्राचीन परंपरा की प्रायः कायापलट हो गई। हर्ष के पश्चात् कई सौ वर्षों का इतिहास अंधकारपूर्ण है। केवल अलाउद्दीन खिलजी के ही राज्काल में (1300 ई.) हम पुनः कृषि की व्यवस्था के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण प्रकाश पाते हैं। जमींदारों पर कठोर बर्ताव होने के साथ ही करों में इतनी वृद्धि कर दी गई थी कि भूमि के अतिरिक्त घरों और पशुओं पर भी कर लगाए गए थे और चीजों के मूल्य इतने गिरा दिए गए थे कि खिलजी के राज्यकाल की दरों को आज भी "अंधेर नगरी, अंधेरे राजा" के नाम से संबोधित किया जाता है। इन भावों का उल्लेख बरनी ने 'तारीख-ए-फिरोजशाही' में इस प्रकार किया है —

गेहूँ 1 पैसे में 2 सेर, जौ साढ़े तीन सेर, धान 3 सेर, खड़ी माष 6 सेर, चने की दाल 3 सेर, मोठ 5 सेर, खांड साढ़े चार छटांक, गुड़ 18 छटांक, मक्खन साढ़े चौदह छटांक, तिल्ली का तेल साढ़े सत्रह छटांक और नमक 9 सेर।

किसानों को लगान में अनाज देना पड़ता था। उस समय दुधारू गाय का मूल्य 3—4 रुपये ओर बकरी का दाम 10—12 पैसे था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि किसानों के लिए कृषि कितनी अलाभकर वृत्ति थी।

अलाउद्दीन के पश्चात् फीरोजशाह तुगलक के काल में किसानों को कुछ राहत मिली। करों में घटती हुई। कहा जाता है कि शेरशाह को छोड़ कर मध्ययुगीन काल में फिरोज तुगलक के समान किसानों का हितैषी कोई शासक नहीं हुआ। जो भी हो, उस समय बिना खेती के जमीन की चिट भी शेष न थी। उसने सिंचाई के लिए सतलुज और यमुना नदी से नहरें निकलवाईं। जिन खेतों की सरकारी नहरों से सिंचाई होती थी उनसे पैदावार का 1/10 भाग सिंचाई कर के रूप में लिया जाने लगा। अनाजों के भावों में कुछ उतार

आया। एक पैसे में पौने दो सेर गेहूँ, साढ़े तीन सेर जौ, साढ़े तीन सेर अन्य अनाज व दालें, ढाई छटांक चीनी तथा पौने तीन छटांक घी बिकने लगा। इसी काल में भारी अकाल पड़ा तो अनाजों के दाम बढ़ गए। फिर मुहम्मद तुगलक का समय आया। 10 वर्षों तक घोर अकाल रहा जिससे कृषि का सत्यानाश हो गया। देश का धन अपहरण करने की लालसा से ही बाबर के पूर्व के आक्रमणकारियों और शासकों ने भारत पर राज्य किया। अतः 1500 ई. तक कृषि में किसी प्रकार का उन्नयन न हो सका। रही-सही सारी व्यवस्था विशृंखलित हो गई। बाबर ने मुगल राज्य की स्थापना भारत में अवश्य की, किंतु युद्धों में व्यस्त रहने के कारण कृषि की ओर उसका कोई ध्यान ही न गया। हुमायूँ को भी अपनी स्थिति संभालते बीता किंतु शेरशाह सूरी ने कृषि व्यवस्था में अपने अल्पकालीन शासन में महत्वपूर्ण परिवर्तन कराए। ये ही परिवर्तन सम्राट अकबर की सफलताओं की आधारशिला हैं।

इसमें संदेह नहीं कि मुगलकाल के पूर्व भी सरकारी आय का सबसे बड़ा साधन जमीन कर या लगान था। बिहार में अपने पिता की जागीर का प्रबंध करते हुए अफगान बादशाह शेरशाह ने लगान-प्रणाली का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। अतः अपने राज्याभिषेक (सन् 1540) के पश्चात् उसने लगान व्यवस्था चालू की जिसकी सफलता का परीक्षण वह स्वयं सहसराम और टांडा में कर चुका था। राजा टोडरमल उसका मंत्री था। बाद में इसी टोडरमल ने अपने अनुभवों को सम्राट अकबर के प्रश्रय में भूमि व्यवस्था में प्रयुक्त किया। शेरशाह ने समान-पद्धति पर जमीन की पैमाइश कराई और जिस जमीन पर पैदावार होती थी या हो सकती थी, उसे हर गाँव में पृथक् निश्चित कर दिया। फिर पैदावार-योग्य जमीन को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया — अच्छी, साधारण और खराब। इन तीनों प्रकार की जमीनों की पैदावार भी निश्चित की गई। इनको जोड़ कर तीन से भाग देने पर प्रति बीघे की औसत पैदावार निकाली गई। इस पैदावार का एक तिहाई सरकारी हिस्सा समझा जाता था। सरकारी लगान को किसान अन्न अथवा नकदी, दोनों ही रूप में दे सकते थे। चूँकि प्रत्येक स्थान की जमीनें और उनकी पैदावारें भिन्न थीं अतः शेरशाह ने लगान निश्चित करने की तीन प्रणालियाँ अपनाईं :

(1) गल्लाबख्शी अथवा बटाई। (2) नश्क अथवा मुकताई या कनकूत और (3) नकदी अथवा जब्ती या जमाई।

बटाई वह प्रणाली थी जिसमें किसान और जमींदार किसी भूमि से उत्पन्न अनाजों को आपस में बाँट लेते थे। यह बटाई तीन प्रकार की हो सकती थी—(1) खेत बँटाई, जिसमें खेत का क्षेत्रफल ही बँट जाता था, (2) लाँक बँटाई, जिसमें अन्न निकालने के पूर्व ही भूसा सहित अनाज बाँट लिया जाता था और (3) रास बँटाई, जिसमें अन्न निकाल कर बँटाई की जाती थी।

नश्क वह प्रणाली थी जिसमें जमीन की पैदावार को मोटे तौर पर कटने के पूर्व आँक लिया जाता था। नकदी प्रथा रुपये देने की थी। इसमें तीन वर्ष या उससे अधिक के लिए प्रतिवर्ष प्रति बीघे का लगान निश्चित हो जाता था और उसे किसानों को प्रत्येक दशा में देना पड़ता था, भले ही सूखा पड़े, बाढ़ आवे या अन्य दैवी प्रकोपों से फसल नष्ट हो जाए। दूसरी ओर अच्छी फसल होने पर भी सरकार लगान में वृद्धि न कर पाती थी। भूमि के सर्वेक्षण और लगान-वसूलयाबी के लिए किसानों से ढाई से पाँच प्रतिशत तक अधिक लगान लिया जाता था। प्रायः अनाज के रूप में वह लगान इकट्ठा होता था, जो अकाल आदि के लिए सुरक्षित रखा जाता था।

इस प्रकार से शेरशाह काल में कृषि की उन्नति सीधे पैदावारों के बढ़ाने के प्रयासों के रूप में न होकर कृषि-योग्य भूमि की व्यवस्था के रूप में हुई। कृषि-शास्त्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है भूमि सर्वेक्षण। उसकी नींव इसी समय पड़ी, यद्यपि खिलजी ने भी ऐसी पैमाइशें कराई थीं।

शेरशाह के बाद का युग भारतीय इतिहास का सर्वोत्तम युग माना जाता है। और वह है अकबर का काल। सम्राट अकबर के साथ-साथ, राजा टोडरमल का नाम सर्वदा लिया जाता है। टोडरमल ने जो भूमि व्यवस्था चलाई उसके मूल रूप में मुगल काल में कोई परिवर्तन नहीं हुए, यद्यपि अकबर के उत्तराधिकारियों ने उसके चलाए हुए बंदोबस्त में कुछ हेर-फेर अवश्य किए। लेनपूल का कथन है कि मध्यकालीन इतिहास का कोई भी व्यक्ति भारत में आज तक टोडरमल की ख्याति नहीं पा सका क्योंकि उसका भूमि कर आय

का स्रोत रहा है किंतु अकबर काल में अन्य अनेक करों के हंट जाने से भूमि कर में सहसा बड़ी भारी वृद्धि आ गई। किंतु फिर भी भूमि की व्यवस्था ने कृषकों को अप्रसन्न न रखा। उनका सीधा संबंध सरकार से जुड़ गया। इतिहासकारों का मत है कि सम्राट अकबर का भूमिकर संगठन रैयतवाड़ी था क्योंकि भूमि कर सीधे रैयत (प्रजा) से लिया जाता था।

अकबर के भूमि संबंधी सुधार सन् 1570-71 ई. से प्रारंभ हुए। इसके लिए स्थानीय कानूनगोओं से सर्वपथम अनुमान-पत्र तैयार कराए गए और फिर राजधानी में दस प्रधान कानूनगोओं ने उनका निरीक्षण किया। मुजफ़्फर खां तुरबती ने राजा टोडरमल की सहायता से इन्हीं अनुमान-पत्रों के आधार पर भूमि कर निर्धारित किए। इसके पूर्व भूमि कर अनुमान से ही लिए जाते थे और भिन्न-भिन्न स्थानों के अफसरों की सहायता नहीं ली जाती थी। इस व्यवस्था के पश्चात् सन् 1573-74 ई. में राजा टोडरमल ने गुजरात प्रांत का बंदोबस्त वहाँ छः महीने रहकर किया। भूमि को व्यवस्थित रूप से नाप कर उसके भिन्न-भिन्न विभाग किए और क्षेत्रफल तथा उपज के अनुसार कर लगाए। जो भूमि कृषि योग्य न थी, उनमें बँटाई आदि प्रथाओं को जारी किया। इसी समय राजा टोडरमल ने भूमि के नापने के गज़ों में आमूल परिवर्तन किए। कपड़े और भूमि नापने के अलग-अलग गज थे। इसी समय 'इलाही गज' चला जो 41 अंगुल का था और सब कार्यों के लिए प्रयुक्त होने लगा। अभी तक जरीबें पटुवे की होतीं जो घट-बढ़ सकती थीं। अब लोहे के छल्लों से युक्त बांस या नर्कट की जरीबें बनाई गईं जो 55 गज के बजाय 60 गजों की होने लगीं। इन जरीबों के बनने से पैमाइश में सरलता होने लगी। एक वर्ग जरीब का ही बीघा होता था। एक बीघे में 3,600 वर्ग गज होते। फिर बीघे में बिस्वा, बिस्वांश, तिस्वांश भी होते। किंतु पैमाइश में बिस्वांश के नीचे के क्षेत्रफल न नापे जाते और 9 बिस्वांश तक का भूमि-कर छोड़ दिया जाता था।

जरीब और बीघे के निर्धारण के पश्चात् भूमि को उपज के अनुसार विभक्त किया गया। भूमि चार प्रकार की मानी गई –

1. पोलज, जिसमें प्रति वर्ष खेती होती।

2. परौटी या परती, जो उर्वर बनाने के लिए कुछ दिनों तक बेकार पड़ी रहती।
3. चांचर – वह जो 2-4 वर्ष तक बिना जोते पड़ी रहती।
4. बंजर – जो 5 या इससे अधिक वर्षों तक बिना जोते पड़ी रहती।

कर-निर्धारण में भूमि की उर्वरा शक्ति का ध्यान तो रखा ही जाता था, किंतु भिन्न-भिन्न अनाजों के लिए भी कर में भिन्नता रखी गई थी। प्रजा अनाज अथवा उसके मूल्य द्वारा राज्य-कर दे सकती थी। किंतु तरबूज, अजवाइन, प्याज, नील, पोस्त, पान, हल्दी, सिंघाड़ा, सन, कचालू, गाजर, मूली, केला, तेंदू, ईख तथा तरकारियों का कर नकद रूप में ही लिया जाता था।

भूमि-कर केवल बोई हुई भूमि का लिया जाता था। परोटी भूमि का कर उतने ही दिनों का लिया जाता था, जितने दिन उसमें फसल उगाई जाती। फिर यह कर पोलज के ही सदृश हो जाता। अतिवृष्टि या अनावृष्टि के कारण तीन या चार साल तक बेकार पड़ी रहने वाली भूमि चांचर के नाम से पुकारी जाती। खेती करने पर इसमें प्रथम वर्ष 5/15 या 1/3 लगान लगता। फिर धीरे-धीरे इसकी गणना पोलज में होने लगती थी। इसी प्रकार बंजर भूमि पर प्रथम वर्ष 1-2 सेर प्रति बीघे लगान, दूसरे वर्ष 5 सेर, तीसरे वर्ष उपज का 1/6, चौथे वर्ष उपज का 1/4 और पांचवे वर्ष बंजर को पोलज मानकर उसके ही समान कर लिया जाता। इस प्रकार कोई भी भूमि पाँच सालों में पोलज हो जाती थी। तब केवल फसल-भेद रह जाता था।

खेतों की उपज को फसलों के अनुसार आषाढ़ी और सावनी में विभक्त किया गया था। इन दोनों के कर भिन्न होते थे। यह कर पोलज को तीन प्रकारों में विभक्त करने के पश्चात् उन तीनों प्रकारों की उपजों का औसत लगाकर निश्चित किया जाता था। प्रत्येक व्यवस्था में यह कर औसत का तृतीयांश ही होता। पोलज के उक्त तीन प्रकार थे– उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। पोलज भूमि की प्रति बीघा उपजों को आषाढ़ी तथा सावनी फसलों

प्रति बीघा पोलज भूमि की उपज (मन-सेरों में)

आषाढ़ी

अनाज	उत्तम		मध्यम		निकृष्ट		औसत		कर (1/3 औसत)	
	म.	से.	म.	से.	म.	से.	म.	से.	म.	से.
गेहूँ	18		12		8	35	12	38½	4	12¾
मसूर	8	10	6	20	4	25	6	18½	2	6
जौ	18		12	20	8	15	12	38¼	4	12½
अलसी	6	20	5	10	3	30	5	7	1	29
मटर	13		10	20	8	25	10	23	3	23
कूर धान	24		18		14	10	18	30	6	10

प्रति बीघा पोलज भमि की उपज (मन-सेरों में)

सावनी

अन्न	उत्तम		मध्यम		निकृष्ट		औसत		कर (औसत का 1/3)	
	म.	से.	म.	से.	म.	से.	म.	से.	म.	से.
ईख (गुड)	13		10	20	7	20	10	13½	3	18
कपास (कपास)	10		7	20	5		7	20	2	20
मामूली (धान)	17		12	20	9	15	12	38½	4	13
मूंग	10	20	7	20	5	10	7	30	2	23½
उड़द	10	20	7	20	5	10	7	30	2	23½
ज्वार	13		10	20	7	20	10	13½	3	18
साँवा	10	20	8	20	5	5	8	1½	2	$27^{1/3}$
कोदो	17		12	20	9	15	12	38½	4	12½
महुवा	11		9		6	20	9		3	

के अनुसार अगली सारणी में दिया जा रहा है। साथ ही कर की भी मात्रा दी जा रही है।

अबुल फजल ने बंजर भूमि के आषाढ़ी ओर सावनी करों का पंचवार्षिक चक्र भी दिया है, जिसके अनुसार किसानों से कर वसूल किया जाता था।

इस प्रकार से बड़े ही यत्नों के साथ अकबर के काल में छठवें वर्ष से 24वें वर्ष तक के भूमि कर संबंधी आँकड़ों को एकत्र किया गया था। अबुल फजल ने मुल्तान, लाहौर, मालवा, इलाहाबाद, दिल्ली, अवध, आगरा आदि सूबों के 19 वर्षों के आषाढ़ी और सावनी करों का वार्षिक विवरण दिया है। किंतु प्रायः अनाजों के मूल्यों के निर्धारण में देर लगती थी। अतः किसानों को लगान चुकता करने में समय लगता। फलतः दस वार्षिक बंदोबस्त चालू किया गया, जिसमें 15 वें से 24 वें वर्ष तक के एकत्रित कर को जोड़ कर दस से भाग दे दिया गया था और जो औसत आया वही वार्षिक भूमि-कर नियुक्त हुआ। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि केवल 20वें वर्ष का एकत्रित कर ध्यान से लगाया गया था। अतः पिछले पाँच वर्ष में कर निर्धारण के लिए प्रतिवर्ष की सर्वोत्तम फसल को ग्रहण किया गया और उसी के अनुसार भूमि कर नियत किया गया। इस बंदोबस्त के पूर्व भूमि कर विवरण 'आइने अकबरी' में 19 वर्षों के लिए विस्तृत रूप से दिया गया है। इन सबसे स्पष्ट है कि उस समय का भूमि कर संगठन आधुनिक पद्धित की तुलना में अत्यंत पेंचदार था। कर वसूल करने के लिए कई प्रकार के कर्मचारी थे जिनमें पटवारी का काम प्रत्येक कृषक की भूमि तथा कर का ब्यौरा रखना था। इस प्रकार का बंदोबस्त कृषकों के लिए भले ही कष्टदायक रहा हो किंतु आपत्तियों के समय कृषकों को कर-मुक्त कर दिया जाता था। राजा की आज्ञा थी कि दैवी आपत्तियों की सूचना उन्हें अवश्य दी जाए। परंतु अबुल फजल ने सम्राट द्वारा माफी का उल्लेख दो-एक बार ही किया है। यहाँ पर अकबरकालीन भावों पर दृष्टिपात करते हुए 1960 के भावों से उनकी तुलना करना अप्रासंगिक न होगा।

अकबर के समय वस्तुओं का मूल्य

मन = 26 सेर 1 दाम = 1/40 रुपया

सामग्री	मूल्य प्रति मन (दामों में)	रुपयों में प्रतिमान	आज के प्रति मन से मूल्य	अकबर काल से 1960 के मूल्यों में गुनी वृद्धि
गेहूँ	12	4.8 आना	7.5 आ.	40
जौं	8	3.2 आ.	4.8 आ.	—
चावल				
बढ़िया	110	2 रु. 12 आ.	4 रु. 02 आ.	12
घटिया	20	8 आ.	12 आ.	40
मूंग	18	7.2 आ.	11.4 आ.	36
उड़द	16	6.4 आ.	9.6 आ.	55
चना	16	6.4 आ.	9.6 आ.	25
चीनी	128	3 रु. 3.2आ.	4 रु. 12.8 आ.	7
घी	105	2 रु.14 आ.	3 रु. 15.5 आ.	215
तिल-तेल	80	2 रु	3 रु.0 आ.	40

उपरोक्त को देखते हुए स्पष्ट हो जाता है कि अकबर के काल से 1960 तक पैदावार तथा उनके दामों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। अंग्रेज़ इतिहास लेखकों ने अकबर काल की कृषि सफलताओं से विद्वेषित होकर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि अकबर के काल में अकाल ही अकाल पड़े। ये अकाल 1556, 1573-74, 1583 और 1595-98 में पड़े। अकबर की मृत्यु के बाद 1630 में अकाल पड़ा जिसमें लोगों को आटे के साथ हड्डी का चूर्ण खाना पड़ा।

कहा जाता है कि सन् 1595-98 ई. के अकाल में भी आदमी ने आदमी को अपना भोजन बनाया था। परंतु भारतीय इतिहासकार मुगल काल में न तो अकालों की बहुलता को और न कठोरता को ही स्थान देते हैं। ये मुगल काल में कृषि को फलवती हुई बताते हैं।

अकबर के काल में जंगलों तथा उद्यानों के संरक्षण और सुव्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया। मुगलकालीन उद्यान विज्ञान निश्चित रूप से स्तुत्य है। जंगलों का संरक्षण केवल शिकार के दृष्टिकोण से होता था।

अकबर की मृत्यु के पश्चात् कृषि में कोई उन्नति नहीं हुई। अंग्रेज़ों का धीरे-धीरे प्राबल्य होता गया और लाभों के आगे, व्यवसायी दृष्टिकोण के कारण, अधिकाधिक कर पर ही ध्यान दिया गया। कृषि की उन्नति पर उनका ध्यान ही नहीं गया। बहुत बाद में कच्चे माल की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत को उपनिवेश बनाकर अंग्रेज़ों ने वैज्ञानिक कृषि की नींव 19वीं शती के अंतिम चरण में डाली।

मध्यकालीन खेती का वर्णन हमें 'आइने अकबरी' तथा 'अकबरनामा' में मिलता है। इनके अनुसार भारत में अनाज, कपास, गन्ना, तिलहन, फल-फूल की खेती बहुतायत से होती थी और यहाँ के निवासी समृद्ध थे। विदेशी यात्री बर्नियर ने अपनी मुगल साम्राज्य की यात्रा में लिखा है "सारा देश उपजाऊ बगीचों के सदृश दिखालाई देता है। नाना प्रकार की सुंदरता और उपजाऊ फसलों और वनस्पति से घिरे हुए यहाँ के गाँव स्वावलंबी हैं। यहाँ पर गेहूँ, धान, सन, केसर, सेब, नाशपाती आदि फलों और शाक भाजियों की खेती होती है। पैदावार की मात्रा पर्याप्त से भी अधिक है। बंगाल में धान और गन्ने की खेती बहुत होती है, जो गोलकुंडा, कर्नाटक, अरब, मेसोपोटामिया और फारस तक भेजी जाती है।"

अभी तक भारतीय कृषि के विकास के संबंध में जितना कुछ लिखा जा चुका है, उसके प्रकाश में मुगल-काल में कृषि सुव्यवस्था ने सर्वेक्षण तथा लगान निर्धारण की ओर अग्रगामी पद रखे। भारतीय कृषि ने हर्ष के पूर्वकालिक वैभव को शेरशाह और अकबर के काल में फिर देखा। जनता ने कृषि की ओर आकृष्ट होकर उसे संपन्न बनाने का प्रयास करना प्रारंभ किया किंतु सहसा अंग्रेज़ों के प्रवेश, उनकी नीति तथा दमन के वशीभूत हो कृषि-वृत्ति को छोड़ दिया और नाना प्रकार के उद्योग-धंधों से जीवन निर्वाह करने का स्वप्न देखना प्रारंभ कर दिया। यह है हमारी भारतीय कृषि की प्राचीन गौरव गाथा। □

चतुर्थ खंड

स्वतंत्रता-पूर्व कृषि

(1800 ई.–1946 ई.)

अध्याय 15

अंग्रेज़ कालीन कृषि (1800-1946)

मुगलों के शासन काल में ईस्ट इंडिया कंपनी ने धीरे-धीरे अपने पांव पसार लिए थे। वह व्यापार न करके भारत की राजनीति में दखल देने लगी थी। अंग्रेज़ों ने भारत को अपना उपनिवेश सा बना लिया था। इस तरह 1857 ई. तक अंग्रेज़ी राज्य सुदृढ़ हो गया।

अंग्रेज़ पहले भारत से बिनौला, खली, रुई, गेहूँ, सरसों तथा हड्डी का निर्यात अपने देशों को करते थे। इन सामग्रियों को अधिक मात्रा में उगाने का एक ही उपाय था कि वैज्ञानिक कृषि का संचार भारत में किया जाए। अतः 1793 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने कपास का उत्पादन बढ़ाने के लिए कई अमरीकी विशेषज्ञ बुलाये। निर्यात के कारण किसानों को अपनी खेती से विशेष लाभ नहीं मिल पाता था।

ग्रामीण इलाकों में उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में कृषि जिस रूप में पल्लवित हो रही थी उसकी कुछ विशेषताएँ इस प्रकार थीं :

1. सिंचाई के लिए तालाबों का पानी काम में लाया जाता था।
2. खेतों को पूरी खाद नहीं पहुँच पाती थी क्योंकि गोबर से कंडे बनाए जाते थे जिनका उपयोग भोजन पकाने में होता था।
3. बुवाई के लिए बीज प्रायः किसान अपनी फसल के एक भाग को सुरक्षित रखकर प्राप्त करते थे या फिर बनियों से मोल लेते थे।
4. खेती कम से कम क्षेत्रफल में की जाती थी क्योंकि सुरक्षा, यातायात, बाजार, व्यापार के साधन सीमित थे।
5. अन्न संग्रह की अल्प अवस्था थी, अतः अकाल पड़ने या टिड्डी का उत्पात

होने पर अन्न संकट उत्पन्न हो जाता था।
6. पशु संवर्धन के लिए सांड सर्वत्र उपलब्ध थे। देशी किस्मों के पशुओं से दूध कम ही प्राप्त होता था। जुताई के लिए बैलों/भैंसों का प्रयोग किया जाता था।
7. जुताई के लिए देशी हल ही काम में लाए जाते थे।

कुल मिलाकर किसान अपने पेशे से संतुष्ट नहीं था क्योंकि लगान चुकाने में उसे जमींदारों का उत्पीड़न सहना होता था।

अब अंग्रेज़ों के कारण कृषि के क्षेत्र में कुछ प्रगति शुरू हो चुकी थी। इस प्रगति का वर्णन हम उन्नीसवीं सदी के पूर्वादर्ध तथा उत्तरादर्ध इन दो काल खंडों में करेंगे।

उन्नीसवीं सदी का पूर्वादर्ध

सर्वप्रथम 1820 ई. में विलियम कैरी ने 'एग्रीकल्चर सोसाइटी ऑफ इंडिया' (Agricultural Society of India) नामक समिति की स्थापना की। इसने कपास, सनई तथा जूट के विषय में हो रही शोधों का विवरण प्रस्तुत किया। 1826 में इस समिति का नाम बदल कर 'एग्री-हार्टिकल्चरल सोसाइटी' (Agri-Horticultural Society) कर दिया गया। 1833 के बाद असम के चाय बागानों का प्रबंध दूर-दूर के कुलियों द्वारा शुरू हुआ किंतु 1839 में पश्चिमी ढंग से चाय की खेती करने के लिए अमरीका से 12 विशेषज्ञ भारत बुलाए गए।

अकाल से सुरक्षा हेतु हेस्टिंग्ज़ के शासन काल में यमुना नदी के पश्चिम तट पर फीरोजशाह द्वारा निर्मित पुरानी नहर का जीर्णोद्धार कराया गया। फिर ऊपरी गंगा नहर, ऊपरी बारी द्वाब, कृष्णा-कावेरी डेल्टा प्रणाली की नींव पड़ी।

पशुपालन के क्षेत्र में पंजाब में अंग्रेज़ सरकार ने 1809 में हिसार में ऊँट प्रजनन केंद्र बनाया था। 1815 में यहीं घोड़ों का प्रजनन केंद्र भी खुला जो

1850 तक चला। घोड़े सेना की आवश्यकता-पूर्ति करते थे। इसी तरह मैसूर में बैलों तथा गायों के संवर्धन केंद्र थे। बंगाल में 1826 में भेड़ों के संकरण का कार्य शुरू हो चुका था किंतु उत्तर प्रदेश में यह प्रयोग असफल सिद्ध हुआ।

उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध

इस काल की घटनाओं में लार्ड मेयो की दूरदृष्टि, दुर्भिक्ष कमीशन का गठन तथा वोयेल्कर की कृषि रिपोर्ट मुख्य हैं।

इस काल में जूट, कपास, नील तथा अन्य फसलों की माँग बढ़ने से इनका उत्पादन कुछेक क्षेत्रों तक सीमित हो गया। उदाहरणार्थ, कपास दक्कन तथा पंजाब में, जूट तथा नील बंगाल में, चाय असम में, अफीम बिहार में और गेहूँ पंजाब में (क्योंकि वहाँ सिंचाई की सुविधा थी)। देखा-देखी बंगाल तथा उड़ीसा में धान के स्थान पर नील, उत्तर प्रदेश में धान्यों के स्थान पर कपास और राजस्थान में धान्यों के स्थान पर पोस्ता उगाया जाने लगा। इससे दुर्भिक्ष के समय (विशेषतया 1865-66 में बंगाल का दुर्भिक्ष) अन्न संकट आ खड़ा हुआ। तब लॉर्ड मेयो ने 6 अप्रैल, 1870 को सेक्रेटरी ऑफ स्टेट इंडिया को एक मेमोरैंडम भेजा कि कृषि का सुधार वैज्ञानिक तरीके से किया जाए। फलस्वरूप जून 1871 में 'डिपार्टमेंट ऑफ रेवेन्यू, कॉमर्स एंड एग्रीकल्चर' की स्थापना हुई। इससे देश में कई जगहों पर कृषि फार्म स्थापित किए गए और कृषि शिक्षा प्रदान करने के लिए 1879 में पूना में 'कॉलेज ऑफ साइंस' खोला गया। 1890 में मुंबई विश्वविद्यालय ने 'कृषि डिप्लोमा' उपाधि देना शुरू किया। 1890 के ही दशक में उत्तर प्रदेश में कानपुर में कृषि कॉलेज खुला।

लॉर्ड मेयो ने पशु रोगों के लिए पशुचिकित्सा विभाग खोलने की संस्तुति की। सर्वप्रथम 1871 में इलाहाबाद में डेयरी फार्म खोला गया।

सड़कों के किनारे वृक्ष लगाने, कुएं खोदने तथा ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने पर बल दिया गया।

'दुर्भिक्ष कमीशन' ने 1880 में यह पता लगाया कि भारत में हर 9 वर्षों

के बाद दो हल्के दुर्भिक्ष और बारह वर्षों में बड़े दुर्भिक्ष पड़ते आए हैं। हर पचास वर्ष पर अकाल भी पड़ता है। फलस्वरूप उसने संस्तुति की, कि, तकनीकी कृषि ज्ञान का उपयोग भारतीय कृषि में किया जाए और इसे साकार करने के लिए हर प्रांत में 'कृषि विभाग' स्थापित किए जाएं। फलस्वरूप 1885 में बंगाल (बिहार तथा उड़ीसा सहित) में पहला कृषि विभाग खुला। 1887-88 में डुमरॉव, बर्दवान तथा शिवपुर में कृषि फार्म स्थापित किए गए और 1895-96 में शिवपुर में कृषि शिक्षण कार्य प्रारंभ किया गया। इसी क्रम में मध्य प्रांत, पंजाब, असम आदि में कृषि विभाग खोले गए।

दुर्भिक्ष कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर केंद्र के कृषि विभाग ने 1889 में जे.ए. वोयेल्कर (J.A. Voelcker) को कृषि रसायनज्ञ नियुक्त किया, जिसने 1893 में भारतीय कृषि के पिछड़ेपन पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

1890 में कृषि शिक्षा तथा शोधकार्य पर बल दिया गया जिसके कारण जे. डब्ल्यू. लेदर (J.W. Leather) को शोध वैज्ञानिक बनाया गया। उसने बिहार के पूसा केंद्र में 1892 में शोध कार्य शुरू किया। शिक्षण का कार्य एस.एच. कोलिंस (S.H. Collins) को दिया गया जिसने पुणे, देहरादून तथा सैदापेट में वन तथा कृषीय शिक्षण पर ध्यान देना शुरू किया।

पशुपालन की दिशा में भी कार्य हो रहा था। 1839 में 'हॉर्स ब्रीडिंग फार्म' खुल चुका था और 1882 में लुधियाना में पशु चिकित्सा कार्यालय तथा 1884 में बंगाल में पशुचिकित्सा कॉलेज स्थापित हुआ। 1890 में पशु रोगों के जीवाणुओं का अध्ययन पुणे में शुरू हुआ। मुक्तेश्वर में पशुमहामारी (rinderpest) का अध्ययन करने के लिए नया संस्थान बना। बाद में यह संस्थान आइज़टनगर (इज्जतनगर, बरैली) में स्थानांतरित हुआ। अच्छे चारे के लिए कानपुर तथा इलाहाबाद में सैनिक फार्म बने जहाँ 'साइलेज' (Silage) से चारा तैयार किया जाने लगा। पंजाब के हिसार में सेना के लिए बैलों की उन्नति की जाने लगी।

1892 में 'एग्रीकल्चरल लेजर' (Agricultural Ledger) नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ जिसमें कृषि के विविध पक्षों की जानकारी दी जाती थी।

बीसवीं सदी का शुभारंभ

स्वतंत्रता प्राप्ति तक का काल

1903 में बिहार के दरभंगा जिले में पूसा नामक स्थान पर 'कृषि शोध संस्थान' (Agricultural Research Institute) स्थापित किए जाने की सिफारिश की गई। लॉर्ड कर्ज़न के प्रयास से शिकागो के एक दानी व्यक्ति हेनरी फिप्स ने 30 हजार पौंड का दान दिया तो 1905 में 'इंपीरियल ऐग्रिकल्चरल इंस्टीट्यूट' बना। अब सारे कृषि विभाग यहीं ला दिए गए, सुंदर प्रयोगशालाएँ बनीं और यह संस्थान कार्य करने लगा। इसके कार्य इस प्रकार थे :

(i) ऐसा फार्म चलाना जो प्रादेशिक विभागों के लिए आदर्श हो।

(ii) फसलों की नस्लें सुधार कर उन्हें उगाना और उनसे प्राप्त बीजों को वितरित करना।

(iii) प्रादेशिक फार्मों से प्राप्त परिणामों की जाँच करना तथा

(iv) छात्रों को उच्चस्तरीय व्यावहारिक प्रशिक्षण देना।

धीरे-धीरे तकाबी दिए जाने की घोषणा से कुएँ खोदे जाने लगे और नई-नई नहरें बनाई गईं। बारंबार अकाल पड़ने से कृषि उत्पादन में ढील न देने की चेतावनी दी गई।

1905 में पूसा में गेहूँ की किस्में (पूसा किस्में) विकसित करने में होवर्ड बंधुओं ने योगदान किया। 1906 में पंजाब में लायलपुर कृषि महाविद्यालय की स्थापना की गई और 1909 में पुणे में भी कृषि महाविद्यालय खुला। इसी श्रृंखला में नागपुर तथा कोयंबटूर में कृषि कॉलेज स्थापित किए गए।

1915 के बाद फलों की खेती के लिए चौबतिया केंद्र चुना गया। 1919 में कृषि को प्रांतीय विषय बना दिया गया जिससे केंद्र के जिम्मे केवल शोधकार्य रहा आया। 1923 में पूसा संस्थान में परास्नातक कक्षाएँ शुरू हुई।

1926 में 'रॉयल कमीशन ऑन ऐग्रीकल्चर' गठित हुआ जिसके अध्यक्ष लार्ड लिनलिथगो बनाए गए। 1929 में 'इंपीरियल कौंसिल ऑफ ऐग्रीकल्चरल रिसर्च' गठित हुई। विश्वविद्यालयों को शोधकार्य कराने के निर्देश दिए गए। 1930 के बाद भारतीय कृषि का सर्वोत्तम काल प्रारंभ होता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, 'इंपीरियल कौंसिल ऑफ ऐग्रीकल्चरल रिसर्च' का कार्य केवल शोधकार्य को देखना और उसका प्रकाशन था अतः उसने कृषि शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया। 1937 में सर जॉन रसेल ने देश की समस्त कृषि संस्थाओं का दौरा करके विभिन्न फसलों की स्थिति के बारे में सरकार के विचारार्थ अपनी विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे 'रसेल रिपोर्ट' के नाम से जाना जाता है।

रसेल की रिपोर्ट में कहा गया है कि (1) विभिन्न प्रांतों ने अपने-अपने शोध केंद्र स्थापित किए हैं और विश्वविद्यालयों ने पौधों तथा मिट्टियों पर मूलभूत शोध शुरू करा दिया है। कुछ अन्य केंद्र भी हैं — यथा, लाहौर की सिंचाई शोध प्रयोगशाला, माटुंगा की कपास शोध प्रयोगशाला, इंदौर स्थित कपास फील्ड स्टेशन तथा टोकलाई का चाय शोध केंद्र।

(2) स्वयं 'इंपीरियल कौंसिल ऑफ ऐग्रिकल्चरल रिसर्च' ने गन्ना, कपास और गेहूँ के विषय में शोध किया है।

रसेल ने उत्तर प्रदेश के जिन संस्थानों का दौरा किया उनमें आगरा कॉलेज, बिचपुरी, शाहजहाँपुर, मुजफ्फरनगर, कानपुर, नगीना, चौबटिया, इलाहाबाद का शीलाधर मृदा शोध संस्थान तथा बनारस विश्वविद्यालय प्रमुख थे।

इस तरह स्वतंत्रतापूर्व किए गए इन प्रयासों से अधिक उत्पादन के लिए जिम्मेदार कुछ कारकों को खोज निकाला गया, यद्यपि गरीब किसानों के बीच इनका प्रचार-प्रसार नहीं हो पाया था। ये कारक थे :

1. उन्नत बीजों के प्रयोग से उपज में वृद्धि।
2. रोगों तथा कीटों के नियंत्रण के लिए प्रतिरोधी फसलें उगाना, फसल चक्र

अपनाना, पादप कीटनाशकों का प्रयोग और जैविक नियंत्रण विधियाँ अपनाना।

3. जल प्रबंधन द्वारा फसलों का नियोजन।
4. भूमि क्षरण को रोकने के उपाय।
5. खाद और उर्वरकों का प्रयोग।
6. मिट्टी परीक्षण।

द्वितीय विश्वयुद्ध और कृषि

युद्ध शुरु होते ही सरकार ने खाद्य उत्पादन बढ़ाने के प्रयास शुरू कर दिए। चूँकि जूट, कपास और मूंगफली का निर्यात रुक गया इससे इन फसलों के क्षेत्रफल में कटौती करके खाद्यानों के क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी कर पाना संभव हो गया। फिर 1942 में "अधिक अन्न उपजाओ" (Grow More Food) अभियान चलाया गया और सितंबर 1943 में मुख्य-मुख्य शहरों में राशनिंग योजना जारी की गई। इसी बीच बंगाल में भारी अकाल पड़ गया। अब आवश्यकता अनुभव की जाने लगी कि अन्नोत्पादन बढ़ाने के लिए उर्वरकों का उत्पादन जरूरी है, अतः 1947 में 'फर्टीलाइजर्स एंड केमिकल्स (ट्रावंकोर) लिमिटेड' में उर्वरक उत्पादन शुरू किया गया। सिंचाई की व्यवस्था के लिए नलकूप लगाए गए और बिजली से चलने वाले लिफ्ट पंप स्थापित हुए। ज्यों ही युद्ध समाप्त हुआ कृषि तथा मात्स्यिकी पर अधिक ध्यान दिया गया।

पशु पालन

इस अवधि में पशु प्रजनन, चारा, पशु रोग, डेयरी उद्योग, भेड़ तथा ऊन एवं कुक्कुट पालन में उल्लेखनीय कार्य हुए।

1929 के पूर्व प्रमाणित सांडों का वितरण और इतर पशुओं को बधिया किया जाता रहा। 'इंडियन कौंसिल ऑफ ऐग्रिकल्चरल रिसर्च' ने सभी नस्लों के पशुओं की झुंड पुस्तिका (Herd book) रखने का प्रस्ताव किया किंतु 1941

में ही अंतर्राष्ट्रीय मानक अपनाए जा सके। संकरण (Cross breeding) का कार्य सैनिक फार्मों में ही चालू था, लेकिन यह विधि अधिक प्रचलित नहीं हो सकी। गायों का कृत्रिम गर्भाधान सर्वप्रथम मैसूर के शाही फार्म में 1939 में संपन्न हुआ किंतु इज्जतनगर में 1942 में 'इंडियन वेटेरिनरी रिसर्च इंस्टीट्यूट' बन जाने से कृत्रिम गर्भाधान पर क्रमबद्ध तरीके से शोधकार्य शुरू हुआ। फलतः 1945 से 1947 के मध्य कलकत्ता, पटना, मांटगोमरी (अब पाकिस्तान में) तथा बंगलौर में कृत्रिम गर्भाधान के शोध केंद्र खोले गए। इसी क्रम में जर्सी सांडों का वीर्य एकत्र करने के लिए 'नेशनल डेयरी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बंगलूर' में वीर्य केंद्र खोला गया। इज्जतनगर में पशु आहार तथा पशु रोगों के बारे में उच्चस्तरीय शोधकार्य शुरू हुआ।

ऊन के लिए भेड़ों के प्रजनन की दिशा में सर्वप्रथम पुणे, अहमदाबाद तथा मैसूर में कार्य चालू हुआ। इसके पूर्व ब्रिटिश अफसरों ने पंजाब, बंगाल तथा मद्रास में व्यक्तिगत प्रयास किये थे।

□

पंचम खंड
आधुनिक कृषि
(1947 से अब तक)

अध्याय 16

स्वतंत्रता परवर्ती कृषि का परिदृश्य

1947 में देश स्वतंत्र हुआ किंतु विभाजन के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में एक बार पुनः असंतुलन आया। 1950 में योजना आयोग के गठन तथा पंचवर्षीय योजनाओं के बनने के बाद ही कृषि सुधार के नए आयाम प्रकट हुए।

समन्वित प्रोजेक्ट (परियोजना)

अभी तक कृषि विषयक शोध कार्य कुछ ही फसलों तथा संस्थानों तक सीमित था और शोध परिणामों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का कोई यत्न नहीं हो रहा था। फलतः शोधों के समन्वयन हेतु 'अखिल भारतीय समन्वित प्रोजेक्ट' (All India Coordinated Project) बनाए गए। इससे स्थानीय तथा प्रक्षेत्रीय समस्याओं को समझने-सुलझाने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना

इसके बाद भारत-अमरीकी संस्तुतियों के आधार पर कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना शुरू हुई। सर्वप्रथम 1960 में पंतनगर (उत्तर प्रदेश) में कृषि विश्वविद्यालय बना जिसमें अध्यापन तथा शोध दोनों को ही स्थान मिला। अभी तक प्रसार कार्य उपेक्षित रहा जिसके कारण शोध के परिणामों का लाभ किसानों को नहीं मिल पा रहा था।

अन्नोत्पादन की नवीन प्रविधियाँ

अन्नोत्पादन बढ़ाने के लिए पहले सिंचाई, सुधरी कृषि प्रणालियों, सुधरे बीजों तथा रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग चालू किए गए। ये सर्वथा नवीन प्रविधियाँ थीं, फलस्वरूप 1967 से लेकर 1974 के बीच कृषि का विकास हुआ।

इस तरह प्रथम पंचवर्षीय योजना में उत्पादन 4% बढ़ा। किंतु द्वितीय तथा तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं में यह उत्पादन घटकर पहले 3% और चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में 2.2% हो गया। इसका कारण यह था कि बहुत से किसान गरीबी के कारण नवीन प्रविधि को अपनाने में अक्षम रहे।

यद्यपि 1960 तक कुछेक फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुई थी किंतु देश में तेलहनी और दलहनी फसलों की कमी थी जिससे देश में वसा तथा प्रोटीन का अभाव था। जब धान की तायचुंग नेटिव 1 तथा आई.आर.-8 किस्में प्रचलित हुईं तो उत्पादन बढ़ा और आई.आर.-8 से स्थानीय अवस्थाओं के अनुरूप नई प्रजातियाँ विकसित की गईं। इसी तरह गेहूँ की मेक्सिकन प्रजाति के प्रचलन से गेहूँ की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। मक्के की संकर प्रजातियाँ 1957 से ही प्रचलित थीं। आलू के बारे में हुई शोधों से उसकी उपज दुगुनी हो गई। इस तरह देश में "हरित क्रांति" (Green Revolution) आई।

गन्ने की नई-नई प्रजातियों का विकास कार्य गन्ना प्रजनन संस्थान, कोयंबटूर के जिम्मे था। अतः वहाँ से कई नई किस्में विकसित हुईं और उनका प्रचलन विदेशों तक में हुआ। पश्चिमी बंगाल में 'जूट कृषीय अनुसंधान संस्थान' ने उल्लेखनीय कार्य किया।

मत्स्य पालन के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। यह कार्य 'सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ फिश टेक्नोलॉजी' के जिम्मे था।

विशेष संस्थानों की स्थापना

शुष्क कृषि (Dry farming) पर आई.सी.ए.आर. ने (1933-43) कार्य किया था जिसके तहत बंधी बनाना, गहरी जुताई करना, खाद का उपयोग और कम बीज दर की संस्तुतियाँ सम्मिलित थीं। बाद में शुष्क कृषि के लिए अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान प्रोजेक्ट बनाकर ज्वार, बाजरा तथा कपास की विभिन्न प्रजातियाँ विकसित की गईं। शुष्क प्रदेशों के लिए केंद्रीय शुष्क मंडल शोध संस्थान (CAZRI) की स्थापना जोधपुर में की गई।

पहाड़ी खेती पर भी ध्यान दिया गया। क्षारीय, लवणीय मृदाओं पर विशेष रुचि दिखाई गई जिसके फलस्वरूप करनाल में 'इंस्टीट्यूट ऑफ स्वाइल सैलिनिटी रिसर्च (Institute of Soil Salinity Research) की स्थापना की गई।

29 अगस्त, 1970 को भारत सरकार ने 'नेशनल कमीशन ऑफ एग्रिकल्चर' की नियुक्ति की जिसने भारतीय कृषि के सर्वांगीण विकास के लिए विस्तृत सुझाव दिए। आज तक कृषि क्षेत्र में उन्हीं के अनुसार कार्य चल रहा है।

देश में 'हरित क्रांति' के बाद दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में 'श्वेत क्रांति' और मत्स्य उत्पादन के क्षेत्र में 'नीली क्रांति' के परिदृश्य आए। अब जैव प्रौद्योगिकी के सूत्रपात से कृषि क्षेत्र में अनेक संभावनाएँ नजर आ रही हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप मौसम विज्ञान तथा भूमि सर्वेक्षण आदि के क्षेत्र में भी क्रांतियाँ उभर रही हैं।

मृदा विज्ञान

मृदा विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति के फलस्वरूप देश में पाई जाने वाली मिट्टियों का अध्ययन, उनका वर्गीकरण और मानचित्रण हुआ। मानचित्रों के लिए सुदूर संवेदन विधि का उपयोग हुआ है जिससे देश में वनाच्छादन तथा ऊसर और बंजर भूमि के विस्तार का सही-सही आकलन संभव हो सका है। यही नहीं, मृदा प्रयोगशालाओं का जाल सारे देश में बिछा हुआ है।

पूसा केंद्र की स्थापना (1905) के बाद वहाँ मृदा रसायन के विषय में कार्य हुआ जिसमें बिहार की मिट्टियों की परीक्षा मुख्य थी। 1989 में यह पाया गया कि मुजफ्फर की 40, सारन की 60, दरभंगा की 75 और चंपारन की 80 प्रतिशत मिट्टियों में उपलब्ध फॉस्फोरस की मात्रा न्यून थी, जिसके कारण इन जिलों में धान की विशिष्टता निम्न श्रेणी की हो गई और उसे खाने से लोगों को बेरी-बेरी की बीमारी होने लगी। चरागाहों में चरने वाले पशुओं का दूध पीने से हड्डियों का रोग हो जाता था क्योंकि फॉस्फोरस-न्यून मिट्टियों में चरने वाले पशुओं के दूधों में इस तत्व की कमी होती। इस प्रकार

इन फॉस्फोरस-न्यून क्षेत्रों तथा अन्य क्षेत्रों में कृत्रिम खादों की आवश्यकता पर पूसा में अनेक अध्ययन हुए जिसके फलस्वरूप देश में सुपरफॉस्फेट तथा अमोनियम सल्फेट जैसे उर्वरकों का प्रयोग ही नहीं हुआ अपितु इनके उत्पादन के लिए कारखाने भी खोले गए। ये काम चल रहे थे कि दुर्भाग्यवश 1934 में भूकंप आने से पूसा परीक्षण केंद्र ध्वस्त हो गया, अतः इसे 1936 में यहाँ से दिल्ली स्थानांतरित करके इसका नाम बदल कर 'भारतीय कृषि अनुसंधान विद्यालय' रख दिया गया। इसके साथ 1000 एकड़ भूमि पर परीक्षण क्षेत्र भी रखा गया जिसमें कृत्रिम खादों की उपयोगिता, बीजों के सुधार, पौधों में वर्णसंकरता, रोगों की मोचन विधि पर उच्चस्तरीय कार्य शुरू हुआ। इस विद्यालय में देश के विद्यार्थी कृषि की उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने लगे। यहाँ एक पुस्तकालय भी स्थापित किया गया जिसमें आधुनिकतम शोध जर्नल तथा पुस्तकें हैं। यहाँ पर फसलों में लगने वाले कीटों का अपूर्व संग्रह भी है। इस विद्यालय में कई विभाग खोले गए — मृदा रसायन, मृदा जीव विज्ञान, पशुपालन, दुग्ध विज्ञान, भूमि सरंक्षण आदि। विगत दशकों में समस्थानिकों के उपयोग के लिए प्रयोगशाला, पेस्टीसाइडों पर अध्ययन के लिए अलग विभाग भी खुल चुके हैं।

देश में भूमि सर्वेक्षण विषयक प्रगति कई चरणों में परिलक्षित होती है। 1928 के पूर्व हैरिस (1914-15), नारिस (1922) तथा विश्वनाथ (1928) ने मद्रास कृषि विभाग के लिए अनेक सर्वेक्षण रिपोर्टें तैयार कीं। चाय उत्पन्न करने वाली मिट्टियों का सर्वेक्षण कार्पेंटर, कूपर तथा हार्लर (1924-25) ने संपन्न किया। इसी तरह पंजाब की मिट्टियों का सर्वेक्षण कार्य पूरा किया गया। 1928 से 1938 तक की अवधि में महत्वपूर्ण सर्वेक्षण कार्य किया गया। 'रॉयल कमीशन' का सुझाव था कि भारत में भूमि सर्वेक्षण का कार्य विशिष्ट योजनाओं के लिए ही हितकर सिद्ध हो सकता है फलतः सिंचाई योजना में मिट्टियों के परीक्षण तथा सर्वेक्षण पर ध्यान गया। गन्ना के लिए भूमि चुनाव एवं भूमि की जल निकासी के लिए मद्रास, मैसूर, पंजाब तथा मुंबई में महत्वपूर्ण भूमि सर्वेक्षण किए गए। इसी काल में काली तथा अन्य मिट्टियों के विकास क्रम पर शोध कार्य हुआ।

1938-47 की अवधि में भारत की चार प्रकार की मिट्टियों का गहन

अध्ययन शुरू हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के वर्ष में भारत सरकार ने स्टेवर्ट को मृदा संबंधी कार्य की योजना बनाने के लिए आमंत्रित किया। फलस्वरूप मद्रास, मुंबई, बिहार तथा बंगाल में भूमि सर्वेक्षण और उर्वरक प्रयोग प्रारंभ किए गए। 1955 में 'अखिल भारतीय मृदा तथा भूमि उपयोग सर्वेक्षण' की योजना (All India Soil and Land use Survey Scheme) चालू हुई और मिट्टियों के मानचित्र तैयार किए गए।

मृदा परीक्षण का कार्य कम महत्वपूर्ण नहीं था। 1942 से शुरू किए इस कार्य में निरंतर प्रगति होती रही। पहले जहाँ सतही नमूनों के विश्लेषण पर बल दिया जाता था वहीं क्रमशः मृदा परिच्छेदिका को मृदा वर्गीकरण का मूलाधार बनाया गया और मृदा उर्वरता में विभिन्न स्तरों के योगदान को महत्व प्रदान किया जाने लगा। मृदा में मृत्तिका (Clay) तथा कार्बनिक पदार्थ (Organic matter) को विशिष्ट अवयव के रूप में स्वीकार करते हुए इनकी धनायन विनिमय क्षमता ज्ञात की जाने लगी। मृदा उर्वरता के विभिन्न कारकों की खोज की गई। क्षेत्र-प्रयोगों (Field experiments) को वरीयता दी गई। मृदा में उपलब्ध तत्वों का विश्लेषण किया गया और NPK के अतिरिक्त Ca, Mg, Na का भी निर्धारण किया जाने लगा। 1970 के बाद मिट्टियों में सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की उपस्थिति और उपलब्धता ज्ञात करने के लिए अखिल भारतीय समन्वित योजनाएँ चालू की गईं। परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि जिंक तत्व की न्यूनता व्यापक है। इसी तरह Cu, Fe, Mn के बारे में भी खोजें हुईं। Mo तथा Co के बारे में भी शोध कार्य हुआ।

अमरीका की मृदा वर्गीकरण की नवीन पद्धति 'सेवेंथ एप्रॉक्सिमेशन' को आधार बनाकर भारतीय मृदाओं का वर्गीकरण, ऑर्डर, सब आर्डर, क्लास आदि में किया गया और सर्वथा नवीन मानचित्र प्रस्तुत किया गया।

1972 के बाद पर्यावरण प्रदूषण के गहन अध्ययन के फलस्वरूप मृदा प्रदूषण पर ध्यान दिया जाने लगा और मिट्टियों में कुछ भारी तत्वों की उपस्थिति के कारण संभावित हानियों का विवेचन हुआ।

□

अध्याय 17

कृषि पत्रकारिता

सर सैयद अहमद खाँ ने 1862 में "वैज्ञानिक समिति" की स्थापना की थी और इसकी पहली बैठक गाजीपुर में हुई, जिसमें वैज्ञानिक तरीकों से खेती पर चर्चा हुई। 4 अक्तूबर, 1880 को 'सार सुधा निधि' में एक संपादकीय प्रकाशित हुआ "वैज्ञानिक कृषि की आवश्यकता।"

इसके बाद ही कृषि हितकारी (1890), गोरक्षा (1891) तथा गोसेवक (1894) पत्रिकाएँ प्रकाश में आईं जिनमें कृषि के किसी न किसी पक्ष पर लेख छपते रहे। 1900 से 1925 के बीच 10 कृषि पत्रिकाओं के प्रकाशित होने की सूचना प्राप्त है जो इटावा, आगरा, मैनपुरी, फतेहपुर, उन्नाव, प्रतापगढ़, इंदौर और पटना से प्रकाशित होती थीं। मध्य प्रदेश में कृषक जगत (साप्ताहिक) 1946 से प्रकाशित हुआ।

इन शुद्ध कृषि पत्रिकाओं के अलावा भी 'सरस्वती', 'वीणा', 'माधुरी' तथा 'विशाल भारत' में कृषि विषयक थोड़ी बहुत सामग्री प्रकाशित होती रही।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कृषि पत्रकारिता का परिदृश्य बदला। सर्वप्रथम भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् से 1948 में "खेती नाम से एक मासिक पत्रिका प्रकाशित हुई जो तब से निरंतर छपती आ रही है। 1948 में ही भोपाल से 'किसान समाचार' मासिक छपने लगा। फिर 1952 में दिल्ली से "उन्नत कृषि" छपी। 1960 में पंत नगर में कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना के काफी बाद 1968 में "किसान-भारती" पत्रिका निकलनी शुरू हुई। राजस्थान से कृषि विषयक कई पत्रिकाएँ निकलीं। इनमें से 'कृषि लोक' जोधपुर से 1974 से छप रही है।

1980 के एक सर्वेक्षण के अनुसार कृषि तथा पशु पालन के क्षेत्र में हिंदी में 101 पत्रिकाएँ छप रही थीं जिनमें से स्वतंत्रता के बाद की 40 पत्रिकाओं की सूची प्रकाशन स्थानों के अनुसार प्रस्तुत की जा रही है।

'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्' ने 1979 में एक शोध पत्रिका "कृषि चयनिका" का प्रकाशन शुरू किया। करनाल से अन्य शोध पत्रिका 'भारतीय कृषि अनुसंधान पत्रिका,' 1985 में निकली जो विशुद्ध कृषि की शोध पत्रिका है। यह विगत 15 वर्षों से लगातार निकल रही है।

बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् ने 1966 में एक 'कृषि कोश' (2 भाग) भी निकाला था। इधर वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने कृषि विषयक अनेक पारिभाषिक कोश भी प्रकाशित किए हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि कृषि पत्रकारिता ने काफी प्रगति की है और आज गाँव-गाँव में उसकी पहुँच बन चुकी है।

रेडियो तथा दूरदर्शन ने भी कृषि विषयों को लोकप्रिय बनाने में महती भूमिका निभाई है।

कृषि पत्रकारिता से संबंद्ध एक पुस्तक (1992) भी छप चुकी है "कृषि पत्रकारिता का सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष"। लेखक हैं— डॉ. रामकृष्ण पराशर तथा नकुल पराशर।

'भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान' ने 'इंडियन सोसायटी ऑफ ऐग्रिकल्चरल साइंस' की स्थापना 1979 में की, जिसका उद्देश्य कृषि क्षेत्र में अंतर्विषयक (इंटरडिसिप्लिनरी) अनुसंधान को बढ़ावा देना है। इस सोसायटी की सदस्य संख्या 1000 है जिसमें से 500 आजीवन सदस्य हैं।

वर्ष 1998 में "भारतीय कृषि का भावी स्वरूप" पर एक संगोष्ठी हुई, जिसमें 30 शोध निबंध हिंदी में प्रस्तुत किए गए जिनका प्रकाशन भारतीय कृषि अनुसंधान द्वारा जून 1999 में हो चुका है। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

1998 में "खेती" के प्रकाशन की स्वर्ण जयंती मनाई गई। इस अवसर पर "स्वर्ण मंजूषा" नामक संग्रह में चुने हुए 50 लेख संकलित हुए हैं। इससे न केवल कृषि के बदलते परिदृश्य का पता चलता है अपितु उन कृषि विषयक लेखकों के नामों का भी पता चलता है जो विज्ञान लेखन में महत्वपूर्ण योगदान कर रहे थे।

स्वर्ण मंजूषा में संकलित
कुछ आदर्श लेख तथा लेखक

		पृष्ठ संख्या
1.	भारत में खुंभी की खेती — जी. वाट्स पैडविक	18
2.	बक्सों में तरकारियों की खेती — राय तथा चौधरी	29
3.	चिगंट मछलियों का परिरक्षण — वेंकट रमन तथा श्रीनिवासन	36
4.	करामाती जड़ी सर्पगंधा — एस. मीनाक्षी	51
5.	दिल्ली का गामा बाग	56
6.	खरपतवारों के नाश में कीड़ों का योग —वी.एन. उपाध्याय वैशम्पायन	59
7.	खेती में क ख ग	65
8.	केंचुए किसान की सेवा में —शांति प्रकाश वर्मा	70
9.	पौधे भी बीमार होते हैं —रमेश दत्त शर्मा	78
10.	हार्मोन से कीड़ों का विनाश —संघी	121
11.	कृषि वैज्ञानिक डॉ. बोर्लोग	125
12.	कोयले से कृषि रसायन —रामचंद्र मिश्र	136
13.	पत्ती से प्रोटीन —डॉ. शिवगोपाल मिश्र	177

14.	पेट्रोलियम से प्रोटीन —सोम प्रकाश	149
15.	खेती में मलजल का प्रयोग —शिंदे	154
16.	उपग्रह द्वारा कृषि का पूर्वानुमान —रणवीर सिंह	204
17.	पंत नगर की रजत जयंती —प्रमोद जोशी	233
18.	भोजन में जैव प्रौद्योगिकी —आर.पी. शर्मा	261
19.	पर्यावरण की बिगड़ती नब्ज़ —जगदीश चंद्र	271
20.	खेती जुते मेरे 27 वर्ष —डॉ. रमेश दत्त शर्मा	
21.	खेती का संघर्षमय शैशव काल — पन्नालाल जायसवाल	

(वी पी. पाल तथा महेंद्र सिंह संघावा के लेख, एम.एस. स्वामीनाथन, बलराम शर्मा नेहरू का उद्‌बोधन)।

1925 के पूर्व कृषि पत्रिकाएँ (10)

कृषि	आगरा	1918
कृषि सुधार	मैनपुरी	1914
किसान	फतेहपुर	1919
किसान	उन्नाव	1920
किसान (साप्ताहिक)	प्रयाग	1921
किसान (पाक्षिक)	कानपुर	1924

किसान मित्र	पटना	1911
किसानोपकारक (मासिक)	प्रतापगढ़	1919
खेती बाड़ी समाचार	इंदौर	1924
हलधर	इटावा	1924

1947 के पश्चात् प्रकाशित कृषि पत्रिकाएँ (40)

दिल्ली से (पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक–12)

1948	खेती	मासिक
1952	उन्नत कृषि	मासिक
1952	गो संवर्धन	मासिक
1957	गोधन	मासिक
1957	कृषि समाचार	—
1968	खाद	मासिक
1972	किसन फीचर	मासिक
1972	खेत और खाद	मासिक
1978	गोपालन	मासिक
1978	फल-फूल	मासिक
1979	कृषि सेवा	पाक्षिक
1979	कृषि चयनिका	त्रैमासिक

राजस्थान (6)

जयपुर से

1948	वन संपदा	अर्धवार्षिक
1952	राजस्थान किसान समाचार	पाक्षिक
1963	राजस्थान कृषि समाचार	मासिक
1975	पशुपालन	त्रैमासिक

1977	उद्यानिक	अर्धवार्षिक
जोधपुर से		
1974	कृषिलोक	मासिक

उत्तर प्रदेश (10) लखनऊ से

1950	कृषि और पशुपालन	मासिक
1957	गन्ना	मासिक
1958	कृषिवाणी	मासिक
1972	हरी धरती	मासिक
1978	उत्तर प्रदेश दुग्ध सामाचार	साप्ताहिक
फैजाबाद से		
1979	सब्जी बीज समाचार	मासिक
सहारनपुर से		
1976	पशु धन	मासिक
पंतनगर से		
1968	किसान भारती	मासिक
बड़हलगंज से		
1981	नई खेती	वार्षिक
गोरखपुर से		
1990	वसुंधरा	त्रैमासिक

बिहार (4)

पूसा से		
1970	आधुनिक किसान	मासिक
मुंगेर से		
1977	खेती और पशुपालन	मासिक

पटना से		
1970	कृषक मित्र	पाक्षिक
1970	कृषि यंत्र तथा खाद समाचार	मासिक

हरियाणा (3)

चंडीगढ़ से		
1978	कृषि अग्रदूत	त्रैमासिक
करनाल से		
1971	डेरी समाचार	मासिक
1974	उद्यान पत्रिका	मासिक

मध्य प्रदेश (2)

भोपाल से		
1948	किसान समाचार	मासिक
इंदौर से		
1999	अहिंसक खेती	द्वैमासिक

कर्नाटक (1)

मैसूर से		
1959	खाद्य विज्ञान	त्रैमासिक

हिमाचल प्रदेश (1)

शिमला से	हिमाचल हार्टीकल्चर	त्रैमास्कि

तमिलनाडु (1)

मद्रास से		
1962	फार्म प्रगति	मासिक

□

अध्याय 18

हिंदी में कृषि-विज्ञान का अवतरण

भारतवर्ष को गौरव प्राप्त है कि वह एक कृषि प्रधान देश है जहाँ सदियों से जीविकोपार्जन के लिए मात्र कृषि ही मुख्य साधन रहा है किंतु भारतीय कृषि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक पारंपरिक ही बनी रही। इस क्षेत्र में न के बराबर ही साहित्य था। किसानों के बीच केवल खना, घाघ-भड्डरी की वर्षा संबंधी कहावतें, खाद तथा खेती संबंधी कहावतें तथा पशुओं के लक्षणों से संबद्ध कहावतें मान्यता पाती रहीं किंतु कोई लिखित साहित्य न था। बीसवीं सदी के आरंभ में विज्ञान की सर्वतोमुखी उन्नति के साथ ही कृषि विज्ञान के क्षेत्र में लोकोपयोगी साहित्य की आवश्यकता महसूस होने लगी और कृषि विषयक साहित्य लिखा जाने लगा। यद्यपि आरंभ में हिंदी में पारिभाषिक शब्दों के अभाव के कारण लेखकों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किंतु उनके द्वारा किए गए प्रयास निश्चय ही प्रशंसनीय हैं। उन्होंने बेझिझक किसानों के बीच प्रचलित शब्दावली को ज्यों का त्यों ग्रहण किया। ऐसा साहित्य निश्चित रूप से प्रारंभिक होगा, अतः उसमें उच्चस्तरीय ज्ञान की खोज व्यर्थ होगी। यह उल्लेखनीय है कि 1900 ई. तक हिंदी में केवल 11 पुस्तकें कृषि विज्ञान से संबंधित थीं जिसमें सबसे प्राचीन 1856 ई. की है।

सारणी-1

1856	कृषि कौमुदी – लाल प्रताप सिंह – मुंबई
1880	खेती बारी – राधारमण – इटावा
1883	खेती की विधा के मुख्य सिद्धांत – हैनरी टैनर अनु. काशीनाथ खत्री, इलाहाबाद
1885	भूतत्व प्रकाश – रामप्रकाश – पटना
1889	खेती बारी – उमानाथ मिश्र – खंगविलास प्रेस बाँकीपुर

1896	पशु चिकित्सा – शिव चंद्र मौलि – फर्रूखाबाद
1896	पशु चिकित्सा – केशव सिंह – बेंकटेशवर प्रेस, मुंबई
1897	विटप विलास (बागवानी) – प्यारेलाल – अलीगढ़
1900	खेती बारी – गंगा शंकर नागर पंचोली – मुंबई
1900	कृषि शिक्षा – गंगाशंकर नागर पंचोली, मुंबई
1900	ढोरों का इलाज – लक्ष्मण सिंह – आगरा

बीसवीं सदी का आरंभ होते ही कृषि क्षेत्र में जो क्रांति आई उसके कारण कृषि की तकनीकी पुस्तकें अनिवार्य लगने लगीं, क्योंकि विभिन्न खोजों को किसानों तक पहुँचाने तथा कृषि प्रशिक्षण की दृष्टि से पुस्तकों का निर्माण आवश्यक हो गया। भारत में प्रारंभ में कृषि के पठन-पाठन का माध्यम अंग्रेज़ी ही रहा, अतः उच्च शिक्षा का लाभ खेतिहर किसानों तक दशकों तक नहीं पहुँच पाया। फलतः लेखकों के समक्ष चुनौती थी कि वे हिंदी के माध्यम से जन-जन तक वैज्ञानिक उपलब्धियों को कैसे पहुँचाएँ। सूक्ष्म अवलोकन से पता चलाता है कि 1912 से 1947 तक 60 पुस्तकों की रचना हो चुकी थी (सारणी-2)। इनमें विषयों की विशेषता पर भी बल दिया गया। ऐसी पुस्तकों में गंगाशंकर नागर पंचौली, रामप्रसाद, गया दत्त त्रिपाठी, शिवनारायण ढेरात्री, शंकरराव जोशी, मुख्तयार सिंह, बैजनाथ प्रसाद यादव, कमलाकर मिश्र, शीतला प्रसाद तिवारी आदि का योगदान अभूतपूर्व है। इनमें से कुछ पुस्तकें नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा कुछ विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा भी प्रकाशित की गईं। ये पुस्तकें माध्यमिक विद्यालयों में कृषि शिक्षा की बढ़ती माँगों की पूर्ति करने में सफल हुईं।

सारणी–2

1912	गेहूँ के गुण, पैदावार की तरक्की-एलबर्ट हावर्ड, बैप्टिस्ट मिशन, कलकत्ता
1914	गेहूँ की खेती – राम प्रसाद, नीमच ग्वालियर
1914	वैज्ञानिक खेती – हेमंत कुमारी देवी, लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस

1915 खाद तथा उसका व्यवहार — गयादत्त त्रिपाठी, राधारमण त्रिपाठी, इलाहाबाद

1916 लाख की खेती, गयादत्त त्रिपाठी, राधारमण त्रिपाठी, इलाहाबाद

1918 राजस्थान की कृषि संबंधी कहावतें — जे.एस. गहलौत, एग्रीकल्चर फार्म, जोधपुर

1918 मूंगफली की खेती तथा मक्का की खेती — राम प्रसाद, नीमच, ग्वालियर

1918 आलू की खेती — राम प्रसाद, नीमच, ग्वालियर

1919 कपास की खेती — गंगाशंकर नागर पंचोली, वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई

1919 कृषि कौमुदी — दुर्गा प्रसाद सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस

1919 खाद — मुख्तयार सिंह, महावीर, प्रसाद पोद्दार, कलकत्ता

1920 कपास और भारतवर्ष — तेज शंकर कोचक, विज्ञान परिषद् प्रयाग

1920 गोरस और गोधन शास्त्र — सखाराम गणेश देउस्कर, काशीनाथ धारे, कानपुर

1921 आलू — गंगाशंकर नागर पंचोली, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

1921 केला — गंगाशंकर नागर पंचोली, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

1921 बागवानी — राजनारायण मिश्र, हिंदी प्रेस प्रयाग

1921 भारत में खेती की तरक्की के तरीके — शिवनारायण देरात्री, दृष्टि प्रबोधक, वनेडा, मेवाड

1921 पौधों में कंडवा रोग — शिवनारायण देरात्री, दृष्टि प्रबोधक, वनेडा, मेवाड़

1921 ढोरों के गोबर और पेशाब की खाद — शिवनारायण देरात्री, दृष्टि प्रबोधक, वनेडा, मेवाड़

1921 ढोरों में मातारोग की विशेषता — शिवनारायण देरात्री, दृष्टि प्रबोधक, वनेडा, मेवाड़

1924 कृषि शास्त्र — तेज शंकर कोचक, गवर्नमेंट कृषि महाविद्यालय, बुलंदशहर

1924 वृक्षावली — प्यारे लाल

1924 वर्षा और वनस्पति — शंकर राव जोशी, विज्ञान परिषद, इलाहाबाद

1924 उद्यान — शंकरराव जोशी, गंगापुस्तकमाला, लखनऊ

1926 कृषि विज्ञान — शीतला प्रसाद त्रिपाठी, रामदयाल अग्रवाल, इलाहाबाद

1927 दुग्ध और दुग्ध की वस्तुएं — ठाकुरदत्त शर्मा, देश उपकारक बुक डिपो, लाहौर

1928 तरकारी की खेती — शंकर राव जोशी, मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर

1928 भारतीय कृषि — ए. हावर्ड, गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद

1929 भारतीय कृषि का विकास — ए. हार्वर्ड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुंबई

1930 सचित्र बागवानी — शिवशंकर मिश्र, पामिली मोहन बनर्जी, कलकत्ता

1934 कृषि शास्त्र — रामचंद्र अरोड़ा, यूनिक लिटरेचर पब्लिशिंग हाउस, अलीगढ़

1935 फलों की खेती और व्यवसाय — नारायण दुलीचंद व्यास, पूना

1935 पौधा और खाद — मुख्तयार सिंह, मेरठ

1935 जल और जुताई — मुख्तयार सिंह, मेरठ

1935	खेती – मुख्तयार सिंह, मेरठ
1935	भूमि – मुख्तयार सिंह, मेरठ
1937	फल संरक्षण – डॉ. गोरख प्रसाद, विज्ञान परिषद्, प्रयाग
1937	चारा दाना और उनके खिलाने की रीति – परमेश्वरी प्रसाद गुप्त, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली
1938	ताड़ का गुड़ – गजानन नायक, कुमारप्पा, वर्धा
1938	हल्दी तथा अदरक की खेती – चारुचंद्र सान्याल, गाँव सुधार पुस्तकमाला, नयागंज लखनऊ
1939	खरबूजे तथा तरबूज की काश्तें – चारुचंद्र सान्याल, गाँव सुधार पुस्तकमाला, नयागंज लखनऊ
1939	मसाले की खेती – चारुचंद्र सान्याल, गाँव सुधार पुस्तकमाला, नयागंज लखनऊ
1940	उद्यान विज्ञान – के.एन. गुप्त, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
1940	उद्यान शास्त्र – बैजनाथ प्रसाद यादव, कृषि सुधार, गौरा, बरेली
1940	फलों तथा सागभाजियों की खेती – बैजनाथ प्रसाद, यादव, कृषि सुधार, गौरा, बरेली
1940	कृषि सुधार का मार्ग – बैजनाथ प्रसाद यादव कृषि सुधार, गौरा, बरेली
1940	कलम पैबंद – शंकर राव जोशी, विज्ञान परिषद, इलाहाबाद
1940	संयुक्त प्रांत में कृषि की उन्नति – एस.बी. सिंह
1941	आलू और इसकी खेती – कमलाकर मिश्र, एग्रीकल्चर इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद

1941	तेलघानी – झावेर भाई पु. पटेल, अखिल भारतीय ग्रामाद्योग संघ, वर्धा
1941	कृषि कर्म – शीतला प्रसाद तिवारी – रामदयाल अग्रवाल, इलाहाबाद
1941	कृषि प्रवेशिका – शीतला प्रसाद तिवारी, रामदयाल अग्रवाल, इलाहाबाद
1941	कृषि दर्पण – हेमचंद्र मिश्र, काशीपुर कृषिशाला, कलकत्ता
1943	अंजीर – रामेश वेदी, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद
1944	कृषि शास्त्र – मथुरा प्रसाद शाही, शाही अनुसंधान, दरभंगा

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् का कृषि साहित्य

देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कृषि कार्यक्रम को प्राथमिकता दी गई और इस क्षेत्र में उच्च शिक्षा पर भी बल दिया गया। कृषि क्षेत्र में काम करने वाले तथा शिक्षा संस्थानों से संबंधित अनेक विद्वानों ने भारतीय भाषाओं में साहित्य की रचना करने के महत्व को समझा और अंग्रेज़ी से संबदध होने के कारण विदेशों की वैज्ञानिक जागृति का पूरा लाभ उठाया। निश्चय ही 1947 से 1966 तक जो पुस्तकें लिखी गईं वे पूर्व प्रकाशित रचनाओं की अपेक्षा अधिक स्तरीय थीं। कहीं-कहीं शिक्षा का माध्यम हिंदी हो जाने से हिंदी में कृषि साहित्य की रचना में सुविधा हुई। कृषि पाठ्यक्रमों की आवश्यकता पूर्ति के लिए अनेक विद्वान और कई संस्थाएँ वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में लग गए। इस समय पाठ्य पुस्तकों के साथ ही सामान्य कृषि विज्ञान, रोचक फसलों तथा उच्चस्तरीय कृषि विषयों की पुस्तकें भी लिखी गयीं जिससे कृषि क्षेत्र के साहित्य में अभूतपूर्व सफलता मिली। हिंदी में वैज्ञानिक तथा कृषि साहित्य की रचनाओं को प्रोत्साहित करने के लिए केंद्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा कई संस्थाओं ने पुरस्कार योजनाएँ भी चालू कीं। इन योजनाओं से वैज्ञानिक लेखकों का उत्साहवर्धन हुआ। परिणामस्वरूप अल्पकाल में कृषि विज्ञान के

विविध अंगों पर पाठ्यपुस्तकें लिख दी गयीं।

इस समय तक जो पुस्तकें लिखी गयीं वे माध्यमिक स्तर तक के लिए पर्याप्त थीं, पर कृषि की उच्चस्तरीय पुस्तकों की रचना में पारिभाषिक शब्दों का अभाव खटक रहा था। अतः कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं को विश्वकोश, संदर्भ ग्रंथ तथा मौलिक ग्रंथ लिखने के लिए सरकार की ओर से वित्तीय सहायता और अनुदान प्रदान किए गए, जिनके परिणाम उत्साहजनक रहे। शिक्षा मंत्रालय ने सन् 1950 में वैज्ञानिक शब्दावली अनुभाग की स्थापना की। इसमें चुने हुए वैज्ञानिक एवं शिक्षाविद रखे गए जिन्होंने विभिन्न समितियों के अंतर्गत अंग्रेज़ी पारिभाषिक शब्दों के लिए हिंदी समानार्थी शब्द गढ़े। 1960 तक जो शब्दावली बनकर स्वीकृत हुई वह इंटरमीडिएट कक्षाओं तक की आवश्यकताओं की ही पूर्ति कर सकी। अतः स्पष्ट है कि इस अवधि की लिखी पुस्तकों के बल पर विश्वविद्यालयों में स्नातक स्तर पर हिंदी द्वारा कृषि-विज्ञान की शिक्षा देना कठिन कार्य था और यही कारण है कि देश के अधिकांश कृषि विश्वविद्यालयों में उच्चशिक्षा अंग्रेज़ी में ही दी जाती रही। उच्चस्तरीय पुस्तकों के अभाव में न तो हिंदी में संतोषजनक सामग्री ही मिलती थी, न ही पारिभाषिक शब्दों का उचित व्यवहार होता था। हिंदी को प्राथमिकता देते हुए उत्तर प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा परिषद् ने बंधन लगाया कि पाठ्यक्रमों के लिए वे ही पुस्तकें चुनी जाएंगी, जिनमें भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का प्रयोग होगा। इससे लेखक, शिक्षक तथा परीक्षार्थी सामन रूप से एक ही शब्दावली का प्रयोग करने के लिए बाध्य हुए तथा ऐसा वातावरण बन गया जिससे विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने के पूर्व विज्ञान के सभी छात्र समान रीति से वैज्ञानिक हिंदी शब्दावली से परिचित और भिज्ञ हो गए हैं।

1947 से 1966 तक विश्वविद्यालय स्तर की भी हिंदी कृषि पुस्तकें बाजारों में आयीं। साथ ही इन पुस्तकों के माध्यम से गूढ़ विषय की जानकारी जनसाधारण को भी मिलने लगी। ऐसी पुस्तकों की संख्या 79 है किंतु इस समय तक कोई भी कृषि कोश नहीं लिखा गया।

सारणी-3

कृषि में 1966 तक विश्वविद्यालय स्तर की हिंदी पुस्तकें

1. सागभाजी की खेती — नारायण दुलीचंद व्यास, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1948
2. भारतवर्ष में उद्यानकारी — अमरनाथ बिंदल, किताब महल, इलाहाबाद, 1948
3. खेती व पशुपालन गणित — चतुरसेन जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1949
4. फलों की खेती और व्यवसाय — नारायण दुलीचंद व्यास, उपाध्याय बंधु, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, दिल्ली, 1959
5. भारतीय ग्राम्य अर्थशास्त्र — शंकर सहाय सक्सेना, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1959
6. खाद का उपयोग — दुर्गा प्रसाद सिंह, ज्ञान मंडल लि. काशी, 1950
7. ट्रैक्टर और खेती — जे.सी. स्मिथ एवं अन्य, विप्लव कार्यालय, लखनऊ 1950
8. खेती की रीति (भाग 3): अन्य फसलों की खेती और व्यवसाय — नारायण दुलीचंद व्यास, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 1950
9. कृषि-शास्त्र — तेजशंकर कोचक, दि अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस, लिमिटेड, 1951
10. भारतीय कृषि अर्थशास्त्र — हरिगोविंद गुप्त, बुकलैंड लि. कलकत्ता, 1951
11. भारतीय कृषि अर्थशास्त्र — हरिगोविंद गुप्त, बुकलैंड लि. कलकत्ता, 1951

12. कृषि वनस्पति विज्ञान (भाग 1) : सस्य वर्गीकरण – ब्रहम् प्रकाश पांडेय, जय प्रकाश नाथ एंड कं. मेरठ, 1952

13. कृषि वनस्पति विज्ञान (भाग 2) : सस्य वर्गीकरण – ब्रहम् प्रकाश पांडेय, जय प्रकाश नाथ एंड कं. मेरठ, 1952

14. कृषि वनस्पति विज्ञान (भाग 3) : सस्य वर्गीकरण – ब्रहम् प्रकाश पांडेय, जय प्रकाश नाथ एंड कं. मेरठ, 1952

15. पशुपालन उपनाम गोसंवर्धन – मेजर अमीचंद अग्रवाल, 1953

16. गन्ने की खेती – शंकर राव जोशी, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 1953

17. कृषि हानिकारक कीट-पतंग – मोतीलाल सेठ, 1953, देशसेवा मंडल, इलाहाबाद

18. उद्यान कृषि दर्शन – रामसागर राय एवं रामप्रसाद सिंह, कलानिकेतन पटना, 1955

19. मवेशियों की घरेलू चिकित्सा – सुरेश प्रसाद शर्मा, मेडिकल पुस्तक भवन, बनारस, 1956

20. भारत में फसलोत्पादन – जयराम सिंह, किताब महल, इलाहाबाद, 1957

21. मिट्टी का प्रारंभिक अध्ययन – जयराम सिंह तथा लवानिया, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, 1957

22. बीज की तैयारी – रामेश्वर अशांत, देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली, 1957

23. रोक फसलों की खेती – नारायण दुलीचंद व्यास, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, 1957

24. उत्तम तरकारियाँ कैसे पैदा करें – जाफर हुसैन मिर्जा, इंडियन बुक डिपो, लखनऊ 1958

25. भारतीय कृषि शास्त्र – गोपीलाल कृषक, सत्य प्रिंटिंग प्रकाशन, नई

दिल्ली, 1959

26. आधुनिक कृषि विज्ञान तथा कृषि प्रसार – एम.एस. जानी एवं अन्य, मगध राजधानी प्रकाशन, पटना, 1959

27. कृषि हानिकारक जीव जंतु – मोती लाल सेठ, विज्ञान साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1959

28. साग-सब्जी उगाओ – लाडली मोहन, आत्माराम एंड संस दिल्ली, 1959

29. खेती के साधन – नारायण दुलीचंद व्यास, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1959

30. आम और उससे निर्मित पदार्थ – विदुर नारायण अग्निहोत्री, कृषि साहित्य प्रकाशन, लखनऊ, 1960

31. फसल संरक्षण विज्ञान – विदुर नारायण अग्निहोत्री, कृषि साहित्य प्रकाशन, लखनऊ, 1960

32. टमाटर – विदुर नारायण अग्निहोत्री, कृषि साहित्य प्रकाशन, लखनऊ, 1960

33. खाद और उर्वरक – फूलदेव सहाय वर्मा, प्रकाशन शाखा-सूचना विभाग प्रकाशन, लखनऊ, 1960

34. कोशानुवंशिकी तथा उद्भिद अभिजनन – बी.सी. गुप्ता, भारत भारती प्रकाशन, मेरठ, 1960

35. गहन खेती – संत बहादुर सिंह, भानुप्रताप सिंह, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, लखनऊ, 1961

36. कृषि अर्थशास्त्र – एस.सी. मीतल, इंडियन बुक हाउस, आगरा, 1961

37. भूमि रसायन – विश्वनाथ प्रसाद, हिंदी समीति, उत्तर प्रदेश, 1961

38. भारत की फसल – जयराम सिंह, किताब महल, इलाहाबाद, 1962

39. कृषि एवं ग्राम्य अर्थशास्त्र – ओम प्रकाश दाहमा, रामप्रसाद एंड संस आगरा, 1962
40. भूमि रसायन – सत्य कुमार, रामा पब्लिकेशन, बडौत, 1962
41. पर्याप्त उत्तम खाद्य – आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1962
42. उन्नत कृषि विज्ञान – जयनाथ, राम, साधना मंन्दिर, 1962
43. भारत में फल तथा फूलों की खेती – मुरारी लाल लावनिया रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1962
44. फार्म प्रबंध भूमि प्रबंध एवं प्रायोगिक कृषि – विपिनचंद्र वार्ष्णेय रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1962
45. पशुपालन – सुरेंद्रपाल सिंह, गुप्ता पब्लिशिंग हाउस, 1962
46. कोशानुवंशिकी तथा पादप प्रजनन – शिव कुमार त्यागी, भारत भंडार, मेरठ, 1962
47. कोशानुवंशिकी तथा उद्भव अभिजनन – ब्रह्मसिंह तथा सुल्तानसिंह, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1962
48. गव्य व्यवसाय – हरचरणलाल गुप्ता एवं इंद्रजीत जौहर, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1963
49. कृषि विज्ञान – राज राजेश्वर दास गुप्त, अनु. मन्मथनाथ गुप्त, राजपाल प्रकाशन, प्रा. लि. 1962
50. कृषि विनाशी कीट और उनका दमन – शैलेंद्र कुमार निर्मल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1963
51. पशु पोषण – महावीर सिंह एवं चंद्रप्रकाश भटनागर, ब्रह्मानंद ब्रदर्स, मेरठ, 1963
52. उद्भिद् व्यापारिकी – बारुसिंह, कक्का पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1963

53. पौधों के रोग – डॉ. रघुबीर सहाय माथुर, प्रकाशन विभाग, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, 1963
54. भारतीय कृषि विज्ञान – चंद्रनाथ मिश्र तथा अन्य, प्रभाकर साहित्य लोक, लखनऊ 1963
55. उर्वरक और खाद – सत्यकुमार, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1963
56. सरल पादप रसायन – सत्यकुमार, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1964
57. पादप रसायन शास्त्र – रणवीर सिंह, एशियन पब्लिशर्स, मुजफ़्फ़रनगर, 1964
58. वनस्पति व्यापारिकी (कृषि वनस्पति विज्ञान भाग 3) – ब्रह्म प्रकाश पांडेय, जय प्रकाशनाथ एंड कं, मेरठ, 1964
59. कृषि वनस्पति व्यापारिकी – ब्रह्मसिंह, भारतीय भंडार, मेरठ, 1964
60. कृषि अर्थशास्त्र – हरसनदास एवं अन्य, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1964
61. कृषि रसायन – एस.जी. शर्मा एवं देवराज सिंह, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा, 1964
62. भूमि रसायन – सत्य कुमार, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1964
63. प्रक्षेत्र एवं भू प्रबंध के मूल सिद्धांत – प्रो. सत्यदेव सिंह, जयप्रकाश नाथ एंड कं. मेरठ, 1964
64. कवकानि तथा उद्भिद् व्याधिकी – सुरेश चंद्र श्रोत्रीय एवं अन्य, मेरठ, 1964
65. डेयरी रसायन शास्त्र – महाबीर सिंह एवं अन्य, ब्रह्मानंद ब्रदर्स, मेरठ, 1964
66. पशुपालन – इंद्रदत्त मेटले एवं अजय सिंह यादव, राम प्रसाद एंड संस, आगरा, 1964
67. प्रयोगात्मक पशुपालन एवं पशु चिकित्सा विज्ञान – देवनारायण पांडेय जयप्रकाश नाथ एंड कं. मेरठ, 1964

68. पशुपोषण के मूल तत्व – कृष्णकुमार गुप्ता, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1964

69. भारत में फलोत्पादन – जयराम सिंह, किताब महल, इलाहाबाद, 1964

70. पशु पोषण एवं डेरी रसायन – डी. एन. पांडे, जय प्रकाशनाथ एंड कं., मेरठ, 1965

71. कृषि अभियंत्रण – बच्चन सिंह, यूनिवर्सिटी बुक डिपो, मेरठ, 1965

72. मृदा रसायन शास्त्र – महाबीर सिंह एवं अन्य, ब्रह्मानंद ब्रदर्स, मेरठ, 1965

73. भारत की सब्जियाँ – ए.ए. यादव, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, 1965

74. कृषि रसायन शास्त्र – अनंत कुमार श्रीवास्तव, किताब महल, इलाहाबाद, 1965

75. भूमि रसायन शास्त्र (उर्वरक तथा खाद) – सुरेशचंद्र शर्मा, यूनिवर्सिटी बुक डिपो, मेरठ, 1965

76. कृषि के हानिकारक कीट – आनंद स्वरूप श्रीवास्तव, एशियन पब्लिशर्स, मुजफ्फरनगर 1965

77. अनुष्ठान अनुवांशिकी, उद्‌भिद् अभिजनन एवं कोशिकी – सुल्तान सिंह, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1966-67

78. कृषि प्रसार – तुरशनपाल पाठक एवं सुल्तान सिंह, रामा पब्लिकेशन हाउस, मेरठ, 1966-67

79. कृषि अर्थशास्त्र तथा भारत की कृषि समस्याएं – दूधनाथ सिंह, रामनाराणलाल बेनी प्रसाद, इलाहाबाद, 1967

1967 के बाद का दृश्य

1967 के बाद कृषि के अंतर्गत अनेक विषयों का समावेश हुआ जिनमें मृत्तिका रसायन, फसलोत्पादन, फसलों के रोग, उद्‌भिद् अभिजनन, कृषि रक्षा, कृषि प्रसार, कृषि अर्थशास्त्र, कृषि अभियंत्रण आदि मुख्य हैं। पशुपालन के अंतर्गत दुग्ध विज्ञान, आहार विज्ञान, पशुओं के रोग एवं चिकित्सा, कुक्कुट,

मत्स्य पालन आदि मुख्य हैं।

भारत में बढ़ती आबादी का पेट भरने के लिए अन्न जुटाने की समस्या बढ़ते ही "हरित क्रांति" का नारा बुलंद हुआ। इस क्रांति के लिए कृषि क्षेत्र में तकनीकी बारीकियों को जन-जन तक पहुँचाना आवश्यक था। परिणामस्वरूप हिंदी व देश की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में उपर्युक्त में से प्रत्येक विषय पर पुस्तकों की रचना का दौर चला तथा हिंदी अकादमियों, कृषि विश्वविद्‌यालयों, शोध संस्थाओं तथा अनेक प्रकाशकों के माध्यम से 1980 तक 400 से भी अधिक पुस्तकें बाजार में आ गईं। साथ ही अनेक लोकोपयोगी पत्रिकाओं का भी उदय हुआ।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली, अनुवाद और प्रकाशन निदेशालय, पंतनगर तथा कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश द्‌वारा समय-समय पर प्रचारित पुस्तिकाएँ कृषि साहित्य और कृषि में उत्पन्न समस्याओं के समाधान में अत्यंत लोकोपयोगी सिद्‌ध हुईं। सरकारी संस्थाओं के अतिरिक्त देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली, रामा पब्लिकेशन मेरठ, आत्माराम एंड संस, दिल्ली आदि का हिंदी द्‌वारा कृषि साहित्य के प्रसार में अनूठा योगदान है।

आगे हम उन 300 से अधिक ग्रंथों की सूची दे रहे हैं (सारणी-4) जो कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यक जानकारी देने वाली है और ये ग्रंथ कृषि विश्वविद्‌यालयों में पाठ्य पुस्तकों या संदर्भ-ग्रंथों का काम दे सकते हैं। पंतनगर विश्वविद्‌यालय में तो कृषि का अध्यापन हिंदी के माध्यम से ही होता है। विज्ञान के अन्य विषयों की अपेक्षा कृषि क्षेत्र में हिंदी को वरीयता दी जाती है।

आलोच्य काल में कृषि के कई कोश भी छपे।

सारणी-4

विश्वविद्‌यालय स्तर की कृषि विज्ञान की प्रमुख पुस्तकें

(क) सामान्य कृषि विज्ञान

1. कृषि दीपिका (कृषि और पशुपालन) – नारायण दुलीचंद व्यास, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1967

2. जल कृषि – दिनेश मणि, पुस्कायन, नई दिल्ली, 1990

3. कृषि पत्रकारिता – रामकृष्ण पाराशर तथा नकुल पाराशर, 1992

4. खेती के वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत – सदाचारी सिंह तोमर, नेशनल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1985

5. कृषि गणित और सांख्यिकी – राजेंद्र सिंह, रामा पब्लिकेशन हाउस, मेरठ, 1990

6. कृषि सांख्यिकी के सिद्धांत – कृष्ण मेहता, हरियाणा साहित्य अकादमी, हिसार

7. जलवायु और कृषि में क्रांति – उदयकुमार वर्मा, किताब महल, इलाहाबाद, 1971

8. स्वतंत्रता रजत जयंती वर्ष में कृषि पशुपालन एवं मत्स्य विभाग की उपलब्धियाँ – दयाकृष्ण, कृषि विभाग, उ.प्र., लखनऊ, 1973

9. कृषि में क्रांति – दयाकृष्ण, विजय प्रकाशन, दिल्ली, 1972

10. उत्तर प्रदेश कृषि मानचित्रावली – प्रेमशंकर तिवारी, पंतनगर, 1976

11. भारतीय कृषि का अर्थतंत्र – एन. एल.अग्रवाल, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1977

12. कृषि के मूल सिद्धांत – वीरेंद्र सिंह वर्मा, भारती भंडार, बड़ौत, मेरठ

13. कृषि दर्शन – महात्मा फुले कृषि विद्यापीठ, अहमदनगर 1989

14. कृषि भूगोल – एल. के. जैन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1992

कृषि अर्थशास्त्र

15. कृषि अर्थशास्त्र एवं प्रबंध – अनु. जगदीश सक्सेना, 1972

16. कृषि अर्थशास्त्र एवं प्रबंध – अनु. जगदीश सक्सेना, 1973

17. प्रारंभिक कृषि अर्थशास्त्र – रामकृष्ण पाराशर, पंतनगर, 1973

18. कृषि का अर्थशास्त्र – अनु. मानिक चंद्र अग्रवाल, 1974

19. भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था – सुदर्शन कुमार कपूर, 1974

20. कृषि वित्त के सिद्धांत एवं व्यवहार – रमेश चंद्र जैन, 1982

21. प्रारंभिक कृषि अर्थशास्त्र – शंकरलाल शाह, 1982

कृषि प्रसार

22. कृषि प्रसार के आधारभूत सिद्धांत – तुरशनपाल पाठक और जयप्रकाश, रामा पब्लिकेशन हाउस, मेरठ, 1968

23. प्रसार पुस्तिका – नियोजन एवं विकास विभाग, उ.प्र., लखनऊ 1968

24. ग्रामीण विकास में योगदान – अनु. रामकिशोर, क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, जंबू तवी, 1980

25. कृषि प्रसार – दुर्गा प्रसाद शर्मा, भारती भंडार, बड़ौत, मेरठ

26. कृषि प्रसार – बी.के. चौबे तथा बी.के. राय, ज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983

27. कृषि प्रसार – संपादक पी. एस. माथुर, हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986

28. भारत में प्रसार शिक्षा – वीरेंद्र कुमार दुबे तथा सुखबीर सिंह, हरियाणा साहित्य, अकादमी, 1985

फार्म प्रबंध

29. फार्म बहीखाता – आर. पी. सिंह, हिसार, 1973

30. फार्म प्रबंध – नई दिशाएँ – ए.एस. कोहली, कृषि अनुसंधान, 1974

31. प्रायोगिक फसलोत्पादन, – संपा., रामकृष्ण पाराशर, पंतनगर, 1976

32. आधुनिक फार्म प्रबंध – कटारसिंह और पांडेय, पंतनगर, 1978

33. फसल प्रबंध – संपा, रामकृष्ण पाराशर, पंतनगर, 1979

34. फसल उत्पादन एवं भूमि फार्म के सिद्धांत – वीरेंद्र सिंह वर्मा, भारती भंडार, बड़ौत, मेरठ

35. प्रायोगिक फार्म प्रबंध – कटारसिंह तथा राधेश्याम लाल श्रीवास्तव, पंतनगर, 1987

कृषि यंत्र

36. प्रारंभिक कृषि अभियांत्रिकी – संपादक रामकृष्ण पाराशर, पंतनगर, 1976

37. कृषि ट्रैक्टरों की देखभाल – दयानंद शर्मा एवं अन्य, हरियणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, 1980

38. फार्म मशीनरी – के. एन. दुबे

39. कृषि अभियंत्रण – रणधावाा चौहान, रामकृष्ण तथा जयसिंह पवार, बड़ौत, 1990 (चतुर्थ सं.)

40. कृषि इंजीनियरी – ए.एम. माइकेल, हरियाणा साहित्य अकादमी, 1990

41. ट्रैक्टर एवं अनुरक्षण – के.सी. भारद्वाज, एम.आर.वर्मा तथा एस. के पात्र, 1983

42. प्रारंभिक सिंचाई इंजीनियरी – गुरुचरन सिंह, दिल्ली, 1987

कृषि विज्ञान

43. कृषि योग्य क्षेत्र के लिए संरक्षण कार्यक्रम का अध्ययन-प्रकाशन प्रबंधक, दिल्ली, 1969

44. मिट्टियाँ – उष्णकटिबंधीय एशिया में उनका रसायन तथा उर्वरता, अनुवादक – टी.पी. पाठक, प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया, 1970

45. प्रयोगिक मृदा विज्ञान – अमरसिंह तथा दीपक घोष, पंतनगर, 1972

46. प्रयोगिक मृदा उर्वरता – अमरसिंह, पंतनगर, 1972

47. भारत में मृदा संरक्षण – अनुवादक विनोद चंद्र, पंतनगर, 1973

48. भारत में मृदा सर्वेक्षण – (अनुवाद) रावत तथा कैथ, पंतनगर, 1973

49. प्रायोगिक मृदा सर्वेक्षण – अनुवादक, राजेंद्र कुमार, पंतनगर, 1974

50. मृदा विज्ञान – विनय सिंह, भारती भंडार, मेरठ, 1975

51. मृदा विज्ञान – एम.एम. राय, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल,1976

52. मृदा उर्वरता एवं उर्वरक – गंगवार सिंह तथा सहगल पंतनगर, 1976

53. भारत में मृदा उर्वरता (राधा रमण अग्रवाल कृत) – अनुवाद-शिवगोविंद द्विवेदी, पंतनगर, 1976

54. अम्लीय मृदाएँ – शिवगोपाल मिश्र, उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1976

55. प्रायोगिक मृदा एवं भूमि उपयोग सर्वेक्षण – शर्मा, पंतनगर, 1979

56. मृदा के मूल सिद्धांत – महाबीर सिंह तथा चंद्र प्रकाश भटनागर, रामा पब्लि, हाउस, मेरठ, 1980

57. भारत में मृदा संरक्षण – जे. के. वसु आदि, उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1982

58. भूमि सुधार के सिद्धांत (भाग 2) – जनार्दन झा. उ. प्र. हिं. ग्रं. अकादमी, लखनऊ, 1982

59. भारत में भूमि संरक्षण – रामाराव, उ. प्र. हिं. ग्रं. अ. लखनऊ, 1982

60. लवणीय क्षारीय मृदा एवं जल का उपयोग – ओ. पी. सिंह तथा जे. एस. पी. यादव, करनाल, 1982

61. राजस्थान की मृदाएँ एवं प्रबंध — बसंत मोघे तथा चंद्रमोहन माथुर, राजस्थान साहित्य अकादमी, जयपुर, 1984

62. ऊसर भूमि सुधार — जे.एस.पी. यादव तथा आई.सी. गुप्ता, 1984

63. मृदा भौतिकी — घिल्डियाल तथा त्रिपाठी, पंतनगर, 1986

64. भूप्रबंध एवं भूसंरक्षण — ए. पी. द्विवेदी, हरियाणा साहित्य अकादमी, 1987

65. पर्वतीय एवं वन मृदा प्रबंधन — जयपाल सिंह यादव, पंतनगर, 1986

66. मृदा अपरदन एवं भूमि संरक्षण — र. प्र. त्रिपाठी, पंतनगर, 1988

67. मृदा स्थिति एवं पादप विकास — एस.पी. वर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, 1989

बीजोत्पादन

68. अच्छे बीज — राजेश दीक्षित, देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली

69. बीज उत्पादन एवं प्रमाणीकरण — रतनलाल अग्रवाल, गोविंदवल्लभ पंत कृषि एवं प्रौ. विश्वविद्यालय, पंतनगर, 1975

70. बीज संसाधन — रामप्रकाश सक्सेना, अनु. प्रकाशन निदेशालय गो. ब. पं. कृषि और प्रौ. विश्वविद्यालय , पंतनगर, 1976

71. बीज कायिकी एवं बीज परीक्षण — गुप्ता और अग्रवाल, अनु. और प्रकाशन, पंतनगर, 1978

72. बीज उत्पादन एवं विपणन का अर्थशास्त्र — शाह, पं. व. पं. कृषि एवं प्रौ. विश्वविद्यालय, पंतनगर, 1979

पादप प्रजनन

73. प्रयोगिक पादप प्रजनन — भूपेंद्र राम गो.ब.पं. कृषि एवं प्रौ. वि.वि. पंतनगर, 1973

74. पादप अभिजनन सरल अध्ययन — सिंह, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1977

75. प्रारंभिक पादप प्रजनन अनु. — प्रमोद जोशी तथा राजेंद्र कुमार अनु. प्रकाशन निदेशालय, पंतनगर, 1976

76. पादप प्रजनन के सिद्धांत — बारू सिंह, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ

77. सस्य वर्गीकरण एवं पादप अभिजनन — ब्रह्म सिंह भारती, भारती भंडार मेरठ

78. पादप पारिस्थिकी — ओमप्रकाश, भारती भंडार मेरठ

79. आनुवंशिकी के प्रारंभिक सिद्धांत — छबिनाथ चौबे, उ. प्र., हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1971

फसल-चक्र

80. फसल उत्पादन में मिलवाँ फसलों का योग — पी.सी.रहेजा, भारतीय कृषि अनु. परिषद्, नई दिल्ली, 1971

81. फसल-चक्र — राजेश दीक्षित, देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली

82. फसल विज्ञान — चंद्रिका ठाकुर, बिहार हिंदी ग्रंथ अ. पटना, 1982

83. समस्याग्रस्त मृदाओं का प्रबंधन — जे. एस. पी. यादव, हरियाणा 1991

सिंचाई

84. बड़ी सिंचाई परियोजनओं का मूल्यांकन, योजना आयोग, दिल्ली, 1970

85. फसलों के जल प्रबंध — सूरजभान, आई. सी. ए. आर., 1983

खाद तथा उर्वरक

86. खाद एवं उर्वरक — अजायब सिंह यादव, राम प्रसाद, आगरा, 1966

87. मिट्टी और खाद – सी.पी. सिन्हा, ज्ञानपीठ, पटना, 1967

88. उर्वरक उपयोग पुस्तिका – फर्टीलाइज़र एशोसिएशन ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1990

89. उर्वरक प्रौद्योगिकी – ब्रह्मा मिश्रा, पंतनगर, 1984

90. प्रयोगिक मृदा परीक्षण एवं उर्वरक प्रबंध – रामसिंह प्रधान आदि, पंतनगर, 1986

91. खेत की जान : हरी खाद – प्रेमबिहारी लाल श्रीवास्तव, प्रसार शिक्षा एवं शिक्षा ब्यूरो, लखनऊ, 1968

92. उर्वरक और खाद – भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली, 1971

93. उर्वरक और खाद – अनु. देवकीनंदन पालीवाल, अनुसंधान, 1971

94. खाद एवं उर्वरक – विजय सिंह, भारती भंडार, मेरठ

95. साग तरकारियों के लिए खाद – कीर्ति सिंह, 1977

96. जीवाणु उर्वरक – शिवगोपाल मिश्र, कृषि अनुसंधान परिषद्, दिल्ली, 1977

97. सूक्ष्ममात्रिक तत्व – शिवगोपाल मिश्र, उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1974

फसल संरक्षण

99. फसल संरक्षण (प्रोटेक्शन ऑफ क्रॉप्स) – उद्यम प्रकाशन, नागपुर, 1967

99. भारत में नींबूवर्गीय पेड़ों का उक्टा सूखा रोग – के.एम. एयप्पा और के.सी. श्रीवास्तव, कृषि अनुसंधान, 1970

100. फसलों के रोग एवं नियंत्रण – आर. प्रसाद एवं खंडेलवाल, हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1973

101. पादप रोग विज्ञान – अनु. राजेंद्र कुर्माकर, अनुवाद और प्रकाशन निदेशालय, पंतनगर, 1975

102. खाद्यान्न भंडार एवं हानिकारक जीव नियंत्रण – विंदा प्रसाद खरे, पंतनगर, 1975

103. सब्जियों के रोग – संपा. रामकृष्ण पाराशर, पंतनगर, 1976

104. पादप रोग विज्ञान – जॉन चार्ल्स वाकर, पंतनगर, 1982

105. आधुनिक पौधा संरक्षण – पी.पी. मेहता तथा एल. आर. साहा, पटना

106. फसलों में रोग – पंतनगर, 1984

107. फसलों के रोगों की रोकथाम – संगमलाल, पंतनगर, 1984

खरपतवार

108. खरपतवार नियंत्रण – ए.एस. यादव और एस.सी. यादव, राम प्रसाद आगरा, 1968

109. अमर-बेल का नियंत्रण – संपा. कृष्ण मेहता, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

110. घातक कीटों एवं जीवों के जैविकीय नियंत्रण – वीरेंद्र प्रसाद सिन्हा, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी पटना, 1990

111. खरपतवार का नियंत्रण – विष्णुमोहन भान, पंतनगर, 1976

112. अपतृण विज्ञान (भाग 1 और 2) – चंद्रिका ठाकुर, म.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1984

कृषि कीट

113. सब्जियों के हानिकारक कीट एवं उनकी रोकथाम – वीरेंद्र कुमार शर्मा, पंतनगर, 1984

114. आर्थिक कीट शास्त्र – ओ.पी. सिंह, सिंघल बुक डिपो, बड़ौत, मेरठ, 1966-67

115. कृषि कीटविज्ञान परिचय – प्रेमानंद चंदोला और नरेंद्र सिंह चौहान, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1968

116. कृषि कीटविज्ञान – शिवशंकर खन्ना, आदर्श प्रकाशन आगरा, 1966

117. कृषिकीट विज्ञान – योगेश कुमार माथुर एवं कृष्णदत्त उपाध्याय, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1977

118. खेती के हानिकारक कीड़े - रामबक्श सिंह कटियार, प्रवाल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1979

119. कृषिकीट विज्ञान – ए.पी. सिंह और चंदेल, 1979

120. फसलों के हानिकारक कीट – बिंदा प्रसाद खरे, पंतनगर, 1981

121. कुरी खाने वाला कीड़ा – चंद्रशेखर लोहुमी, कृषि अनु. 1980

122. कृषिकीट विज्ञान – एस.पी. सिंह और चंदेल

123. रेशा फसलों के कीट (अनुवाद) – बच्चा सिंह और स्नेहमय चटर्जी, 1980

124. कृषि के हानिकारक कीट तथा उनका विवेचन – आनंद स्वरूप श्रीवास्तव, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली, 1982

125. कृषि जंतु विज्ञान – के.डी. उपाध्याय, साक्षी पब्लि. येरा, 1990

126. खाद्यान्न भंडारण और हानिकारक जीव – बिंदा प्रसाद खरे, पंतनगर, 1983

कृमि

127. कृमि संधिपाद तथा प्रजीव – संपा. चंद्रवीर शर्मा, अनु. और प्रका. निदेशालय, पंतनगर, 1972

128. पादप कृमि विज्ञान – गोपाल स्वरूप, राजस्थान ग्रंथ अकादमी, 1982

129. पादप रोग नियंत्रण – कृष्ण गोपाल नेमा, हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986

सस्यविज्ञान और फसलें

130. धान्यों की सघन खेती – अंबिका सिंह एवं अन्य, फर्टिलाइजर एसोसिएशन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 1969

131. बिहार में रबी फसलों की पैकेज प्रणाली – राजेंद्र कृषि वि.वि. पूसा, बिहार

132. भारत की प्रमुख फसलें – संपा. हरिदत्त, पंतनगर, 1971

133. एशियाई फसलों का प्रजनन – अनु. देवेंद्र मेवाड़ी, पंतनगर, 1973

134. सस्यविज्ञान के मूलभूत सिद्धांत – उदयकुमार वर्मा, पंतनगर, 1977

135. फसलोत्पादन एवं खरपतवार नियंत्रण – छिद्दा सिंह और ओमप्रकाश, रामा पब्लिकेशन हाउस, मेरठ, 1979

136. खरीफ की फसलें एवं पादप पारिस्थितिकी – छिद्दा सिंह और ओमप्रकाश, रामा पब्लिकेशन हाउस, मेरठ, 1980

137. रबी की फसलें – छिद्दा सिंह और ओमप्रकाश, रामा पब्लिकेशन हाउस, मेरठ, 1980

138. खरीफ की फसलें – छिद्दा सिंह और ओमप्रकाश, रामा पब्लिकेशन हाउस, मेरठ, 1980

139. सस्यविज्ञान के सिद्धांत एवं फसलें – छिद्दा सिंह और ओमप्रकाश, रामा पब्लिकेशन हाउस, मेरठ, 1980

140. सस्यविज्ञान व मृदा प्रबंध के सिद्धांत एवं फसलें – छिद्दा सिंह और ओमप्रकाश, रामा पब्लिकेशन हाउस, मेरठ, 1980

141. भारत की प्रमुख फसलें – कालीचरण शर्मा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली, 1982

142. फसलों के उत्पादन की अभ्यास पुस्तिका – टी.ए. सिंह तथा अन्य, 1982

143. खरीफ की फसलें – भारती भंडार, मेरठ

144. चारे की फसलें और बीज – शिव दर्शन राय तथा विनोद कुमार मिश्र, कृषि अनुसंधान, 1981

अनाजों की खेती

145. संकर मक्का – विट्ठल, कृषि अनुंधान परिषद, 1971

146. बौने गेहूँ की खेती – अंबिका सिंह और महाबल राम 1975

147. भारत के चरागाह एवं चारा फसलें – पंजाब सिंह, हरियाणा कृषि वि. वि., 1991

148. बौने धान की खेती – अनु. गीता शर्मा, हरियाणा कृषि वि., 1976

149. धान : बीमारियाँ व नियंत्रण – एम.पी. श्रीवास्तव, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, 1978

दलहन

150. दलहन अनुसंधान : नई दिशाएँ – संपा. रामगोपाल चतुर्वेदी, कृषि अनुसंधान परिषद, दिल्ली, 1972

151. दलहनी फसलें – रामकुमार पांडेय एवं हरिहर प्रसाद सिंह, पंतनगर, 1989

आलू

152. आलू की सुधरी खेती – हीरानंद तथा जगदीश प्रसाद शर्मा, केंद्रीय आलू संस्थान, शिमला, 1987

153. आलू के विषाणु रोग – बी.बी. नगाइच, भारतीय कृषि अनु. परिषद्, नई दिल्ली, 1971

154. आलू के कीट नियंत्रण – राकेश कश्यप और अमरनाथ वर्मा, हरियाणा कृषि वि.वि., हिसार, 1978

155. आलू उत्पादन – विदुरनारायण अग्निहोत्री, बिहार ग्रंथ अकादमी, 1982

156. आलू उत्पादन एवं विकास – हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, 1988

157. आलू की खेती – दर्शनानंद, इलाहाबाद, 1990

कपास

158. कपास – (अनूदित'गुजराती मूल पुस्तक से) कृषि अनुसंधान परिषद्, दिल्ली, 1974

159. कपास अनुसंधान : नई दिशाएँ – संपा. रामगोपाल चतुर्वेदी, कृषि अनु, 1979

160. हरियाणा में कपास की खेती – एम. एस. कैरो एवं अन्य, हरियाणा कृषि विश्व., हिसार, 1980

161. कपास विज्ञान – मुंशी सिंह, कृषि अनुसंधान परिषद् दिल्ली, 1984

जूट

162. भारत में पटसन की खेती – सिद्धनाथ पांडेय और प्रेमनाथ त्रिपाठी, कृषि अनु. प., दिल्ली, 1989

163. सफेद लट – जिले सिंह और फतेहसिंह पूनिया, हरियाणा कृषि वि. वि, हिसार, 1979

गन्ना

164. ईख और गन्ना – फूलदेव सहाय वर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

165. मीठा गन्ना : मोटा गन्ना – ब्रह्मदत्त विद्यालंकर, सकुन प्रकाशन, दिल्ली, 1967

166. ईख की सघन खेती – पी.के. बसु, राजेंद्र कृषि वि.वि., पूसा. बिहार, 1978

तंबाकू

167. तंबाकू की खेती – कांत ऋषि, हिंद पुस्तक भंडार, दिल्ली

चाय

168. चाय, बरसीम, सेम और लूसर्न की खेती – राजेश दीक्षित, देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली

169. भारतीय चाय – भगवान सिंह, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली

तिलहन

170. सरसों, राई, तोरिया, तारामीरा और अलसी की खेती – राजेश दीक्षित, देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली

अन्य

171. पान की खेती का आधुनिकीकरण – बी.आर. बालासुब्रमण्यम और रामकिशोर टंडन, राष्ट्रीय वानस्पतिक अनु. संस्थान, लखनऊ, 1980

172. गोंद और राल – प्रकाशन प्रबंधक, भारतीय वन प्रकाशन ग्रंथमाला, दिल्ली, 1975

173. खाद्यान्न भंडारण एवं हानिकारक जीव नियंत्रण – खरे, उ.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1972

174. चारा उत्पादन एवं परीक्षण – शिवदर्शन राय, उ.प्र. हिंदी ग्रंथमाला, लखनऊ, 1982

फलोद्यान

175. उपयोगी फलों की खेती – राजेश दीक्षित, देहाती पुस्तक भंडार 1968

177. भारत में शीतोष्ण फलों की बागवानी – राजेंद्र प्रसाद श्रीवास्तव, कृषि अनु. प. नई दिल्ली, 1974

178. फलों के रोग – अमरनाथ मुखोपाध्याय आदि, पंतनगर, 1976

179. फल विज्ञान – राजेंद्र प्रसाद श्रीवास्तव, कृषि अनु. संस्थान परिषद्, दिल्ली, 1978

180. फल विज्ञान – रामनाथ सिंह, कृषि अनु. , दिल्ली, 1978

181. फलों के रोग – पंतनगर, दिल्ली, 1982

182. फल उत्पादन – राजमणि पांडेय तथा कौशल कुमार मिश्र, पंतनगर, 1983

183. फल वृक्षों का पोषण – राजेंद्र प्रसाद श्रीवास्तव, कृषि अनु. दिल्ली, 1984

184. फलों की उन्नत बागवानी – कौशल कुमार मिश्र तथा इंद्रपाल सिंह, पंतनगर, 1985

185. फल जैविकी (अनुवाद) – पंतनगर, 1986

186. फलोत्पादन के मूल आधार (अनुवाद) – पंतनगर, 1987

187. फलों की खेती – शिवराज सिंह तेवरिया, हरियाणा, 1989

188. आधुनिक फल विज्ञान – शिवराज सिंह तेवरिया, उ.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1990

189. हरियाणा में बेर की खेती – बी.एस. चूड़ावत और एच.सी. श्रीवास्तव, हरियाणा कृषि वि.वि., हिसार, 1978

190. नींबू, संतरा, माल्टा की खेती – रामेश्वर अशांत, हिंद पुस्तक भंडार, दिल्ली

191. अंजीर – रामेश वेदी, आत्माराम एंड संस, दिल्ली

192. चीकू – अनु. देवकीनंदन पालीवाल, भारतीय कृषि अनु. परि., नई दिल्ली

193. नारियल – रामेश वेदी, आत्माराम एंड संस, दिल्ली

194. पपीता – रामेश वेदी, आत्माराम एंड संस, दिल्ली

195. पपीते की खेती – कांत ऋषि, हिंद पुस्तक भंडार, दिल्ली

196. अमरूद – र. पांडेय तथा क.क. मिश्रा, भारतीय कृषि अनुं. परि., नई दिल्ली

197. अमरूद की बागवानी – दर्शनानंद, इलाहाबाद, 1988

198. सोयाबीन – ओ.पी. सिंह तथा एस.के. श्रीवास्तव, बीकानेर 1989

199. किशमिश उत्पादन – जगपाल सिंह एवं अन्य, हरियाणा कृषि वि.वि, हिसार, 1972

200. आँवला – रामेश बेदी, आत्माराम एंड संस, दिल्ली

201. केले की खेती – राजेश दीक्षित, देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली

202. अंगूर उत्पादन – शिवराज सिंह तेवरिया और दर्शनानंद, जनहित प्रकाशन, लखनऊ, 1971

203. उत्तर प्रदेश में अंगूर की खेती – सुरेंद्रनाथ प्रसाद, शिक्षा और प्रशिक्षण ब्यूरो, लखनऊ, 1968

204. हरियाणा में अंगूर की खेती – जगपाल सिंह एवं अन्य, हरियाणा कृषि वि.वि. हिसार, 1972.

205. व्यापारिक फल और तरकारियाँ – जी. कूस, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली, 1972

उद्यान विज्ञान

206. बागवानी – कृपाल सिंह भिंडर, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1969

207. शोभाकर उद्यान – संतराम, पंतनगर, 1983

208. सुहावने उद्यान – एम.एस. रंधावा, कृषि अनु. दिल्ली, 1970

209. उद्यान शास्त्र तथा बागवानी शिक्षण – एम.एल. वर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1971

210. उद्यान विज्ञान – अनु. जगदीश सक्सेना, पंतनगर, 1975

211. घरेलू बागवानी – श्याम सुंदर पुरोहित, अनुपम पॉकेट बुक्स दिल्ली, 1976

212. परिष्कृत बागवानी एवं क्रियात्मक कार्य – लक्ष्मण कुमार चतुर्वेदी रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, 1976

213. हिमाचल प्रदेश में सेब उत्पादन की नई दिशाएँ – कृष्ण कुमार जिंदल आदि, सोलन, 1992

214. उद्यान विज्ञान – चेतनसिंह और हरेंद्रसिंह, भारती भंडार, मेरठ, 1978

215. वैज्ञानिक उद्यान शास्त्र – एस. डी. श्रीवास्तव, साँची प्रकाशन, भोपाल, 1980

216. फल एवं पुष्पोत्पादन – शर्मा एवं सिंह, भारती भंडार, मेरठ

217. उद्यान विज्ञान – एस.एस. श्रीवास्तव, सेंट्रल बुक हाउस, रायपुर 1990-91

साग सब्जियों की खेती

218. पंजाब में सब्जियों की काश्त – अनु. कृष्ण मेहता, पंजाब कृषि वि.वि. लुधियाना, 1967

219. व्यापारिक फल और तरकारियाँ – अनु. गिरधारीलाल और हरिश्चंद्र श्रीवास्तव, हिंदी समिति, लखनऊ, 1978

220. सब्जी उत्पादन – बी. के. शर्मा इत्यादि, सोलन, 1990

221. सब्जी की खेती – दर्शनानंद, 1989

222. लहसुन की काश्त — अनु. कृष्ण मेहता, कृषि सूचना विभाग, पंजाब कृषि वि.वि. लुधियाना, 1968

223. सब्जियाँ — अनु. सुमंगल प्रकाश, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1975

224. भारत में सब्जी उत्पादन — अनु. प्रमोद जोशी, पंतनगर, 1976

225. बिहार में सब्जियों की पैकेज प्रणाली — राजेंद्र कृषि वि. वि., पूसा, 1977

226. साग तरकारियों के लिए खाद — कीर्ति सिंह, कृषि अनुसंधान परिषद्, दिल्ली, 1977

227. खुंभी (मशरूम) की खेती — नवीनचंद्र पाठक एवं अन्य, राष्ट्रीय वनस्पति अनु. संस्थान, लखनऊ, 1979

228. सब्जियों की खेती : एक व्यवसाय — दिग्विजय सिंह चौहान, पंतनगर, 1981

229. सब्जियों का रोग, पंतनगर, 1982

230. भारत में शाकोत्पादन — प्रताप नारायण वाजपेई तथा राजेंद्र कुमार शुक्ल, राजस्थान ग्रंथ अकादमी, 1981

231. गुलदाउदी : राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान की विवरणिका — अनु. रामकिशोर टंडन, राष्ट्रीय वनस्पति अनु. संस्थान, लखनऊ, 1976

232. भारत में सब्जी उत्पादन — दिग्विजय सिंह चौहान, उ.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1982

पादप रसायन

233. पादप रसायन — सत्य कुमार, रामा पब्लिकेशन, बड़ौत

234. पादपीय उपापचय — विनोद बिहारी शर्मा, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1972

235. पादप रसायन, भाग 1 — शिवगोपाल मिश्र, उ.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1973

236. पादप रसायन, भाग 2 — शिवनाथ प्रसाद, उ.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी लखनऊ, 1974

237. पादप हॉरमोन — श्याम सुंदर पुरोहित, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना

238. पादप कृषि विज्ञान — गोपाल स्वरूप, राजस्थान ग्रंथ अकादमी

पशुपालन

239. पशु पोषण के मूलतत्व — कृष्ण कुमार गुप्त, रामा पब्लिकेशन हाउस, मेरठ, 1968

240. पालतू पशु — अनु. प्रेमकांत भार्गव, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1968

241. पशु पालन विज्ञान — कृषि अनुसंधान परिषद् दिल्ली, 1969

242. पशुपालन विज्ञान — आर.एस.सिंह तथा जे.पी. सिंह, गुरु नानक पुस्तक भंडार, करनाल, 1971

243. पशुपालन — रामचरण प्रसाद तथा हरिराज मिश्रा, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1973

244. आधुनिक पशु पालन — देवनारायण पांडेय, विद्या प्रकाशन गृह, इलाहाबाद, 1980

245. पशुपालन विज्ञान — पी.एन. त्रिपाठी तथा अन्य, विकास पब्लि. हाउस, दिल्ली, 1980

246. आधुनिक गोपशु प्रबंधन — डेवस, उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ, अकादमी, 1980

247. पशुपोषण के खनिज — मुरारी लाल चतुर्वेदी, पंतनगर, 1984

248. पशु विधि शास्त्र – जगदीश चंद्र गुप्त, पंतनगर, 1984

249. पशु पालन प्रबंध – रामजीत शर्मा, पंतनगर, 1987

250. पशुओं के आहार और आहारिक रोग – सत्यपाल अरोरा, पंतनगर, 1988

251. पशुपोषण के सिद्धांत – डी. डी. मुद्गल, हरियाणा साहित्य अकादमी, 1989

252. दुधारू पशुपालन – दयाशंकर सिंह तथा हरनाम सिंह, फैजाबाद, 1991

पशु प्रजनन

253. पशु प्रजनन के सिद्धांत – एच. सी. गुप्ता और राजेंद्र सिंह, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1970

254. भ्रूण विज्ञान की प्रयोगशाला पुस्तिका – राव, पंतनगर, 1972

255. फार्म पशु प्रजनन एवं उन्नयन – अनु. महेश सक्सेना और गंगा महेश मिश्र, पंतनगर, 1976

256. पशु प्रजनन एवं कृत्रिम रेतन – सतीश चंद्र जोशी, मध्य प्रदेश ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1982

पशु चिकित्सा

257. एनीमल हस्बैंड्री – विष्णु दत्त, देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली, 1966

258. पशुओं के क्षय रोग का निदान – एस.पी.एस. शास्त्री, कृषि अनु. दिल्ली, 1968

259. पशुओं में क्षय रोग का निदान – जे.एम. लाल, कृषि अनु. दिल्ली, 1668

260. घरेलू पशु चिकित्सा – राम नरेश राय, हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली, 1970

261. पशु आयुर्विज्ञान – अनु. देवनारायण पांडे, हिंदी प्रकाशन समिति, काशी हिंदी विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1970

262. पशु स्वास्थ्य चिकित्सा, पंतनगर, 1972

263. पशु जीवाणु एवं विषाणु विज्ञान, पंतनगर, 1973

264. दुधारू पशु उत्पादन एवं चिकित्सा – एन.एस. कुशवाहा, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1976

265. भारत में पालतू पशुओं की कीट व्याधियाँ – आर. पी. चौधरी, कृषि अनु. दिल्ली, 1977

266. पशु जीवाणु एवं विषाणु विज्ञान, भाग 1 – अनु. डी.एन. पांडे, हिंदी प्रकाशन समिति, काशी, 1978। भाग 2 – अनु. डी.एन. पांडे, हिंदी प्रकाशन समिति, काशी, 1978

267. पशुओं की प्राणघातक बीमारियाँ और उनका इलाज – देवनारायण पांडेय, सुलोक प्रकाशन, वाराणसी, 1980

268. पशु आयुर्विज्ञान – डी. एच. उडल, आयोग, नई दिल्ली, 1982

269. पशु स्वास्थ्य विज्ञान – अनु. बी. एस. श्रीवास्तव, लखनऊ, 1982

270. पालतू पशुओं के कृमि संधिपाद तथा प्रजीव – ई.जे. एस. सोल्तवी, लखनऊ, 1982

271. पशु विकिरण विज्ञान के सिद्धांत – हरपाल सिंह, पंतनगर, 1985

पशु शरीर क्रियाविज्ञान

272. पालतू पशुओं की शरीर रचना तथा शरीर क्रियाविज्ञान – संपा. चंद्रवीर शर्मा, पंतनगर, 1972

273. पालतू पशुओं के ऊतक विज्ञान के मूल सिद्धांत, पंतनगर, 1972

274. पालतू प्राणियों की शरीर रचना – "मध्य प्रदेश ग्रंथ अकादमी, भोपाल

275. पालतू पशुओं का शरीर क्रियाविज्ञान, भाग 1 — अनु. पृथ्वीपाल पांडे और अन्य, पंतनगर, 1975, भाग 2 1975

276. पालतू पशुओं का शरीर रचना विज्ञान तथा शरीर क्रियाविज्ञान — आर. डी. फ्रैंडसन, लखनऊ, 1982

277. पशु शरीर क्रियाविज्ञान — चंद्रवीर शैलाज, पंतनगर, 1984

मवेशी

278. बैल की शरीररचना — संपादक चंद्रवीर शर्मा, लखनऊ 1971

279. स्वस्थ गाय भैंस से अधिक उत्पादन — एस.बी. लाल तथा अन्य, भारतीय पशुपालन अनुसंधान संस्थान, बरेली, 1972

280. गाय भैंस की भारतीय नस्लों के अभिलक्षण — अनु. विनोद चंद्र, पंतनगर, 1973

281. भारत में भेड़ पालन — कुलानंद पुरोहित, कृषि अनु. , दिल्ली, 1973

282. आधुनिक गो पशु प्रबंध — अनु. प्रमोद जोशी तथा अन्य, पंतनगर, 1975

283. शूकर पालन — राम प्रताप सिंह तथा इंद्रजीत सिंह, फैजाबाद

284. भेड़ और बकरी पोषण — सुरेंद्र कुमार रंजन तथा विष्णु प्रसाद शुक्ल, लखनऊ, 1982

285. भेड़ पालन के मूल तत्व — बी. आर. चौधरी, राजस्थान साहित्य अकादमी, जयपुर, 1982

286. भारत में मुर्गी पालन — संपादक : रामगोपाल चतुर्वेदी, कृषि अनु. दिल्ली, 1973

287. मुर्गी पालन — अभय कुमार सिन्हा, बिहार ग्रंथ अकादमी, 1973

288. मुर्गी प्रजनन — एस.पी. सिन्हा तथा बी. पंडा, कृषि अनु. दिल्ली, 1979

289. कुक्कुट पोषक — सुरेश कुंवर सिंह, पंतनगर, 1985

290. कुक्कुटों के रोग तथा उनकी रोकथाम — हरिबल्लभ सिंह चौहान, पंतनगर, 1986

291. भारत में कुक्कुट पालन तथा प्रबंध — एस.एस. सेंगर, बिहार ग्रंथ अकादमी, 1985

292. वैज्ञानिक विधि द्वारा कुक्कुट पालन — सुमन कुमार वर्मा तथा श्याम बिहारी सिन्हा, राँची, 1989

293. कुक्कुटों के प्रमुख रोग एवं उपचार — राजेंद्र प्रसाद सिंह तथा आर. डी. गोयल, कर्नाल, 1991

दुग्ध उद्योग एवं डेरी रसायन

294. मिल्क एंड मिल्क प्रोडक्ट्स — कालीचरण गुप्त, देहाती पुस्तक भंडार, 1968

295. गव्य रसायन — विजयपाल सिंह, रामा पब्लि. हाउस, मेरठ, 1970

296. डेरी उद्योग – सरल अध्ययन — हरिसिंह, कुक्का पब्लि. हाउस, मेरठ, 1970

297. प्रायोगिक दुग्ध रसायन विज्ञान — सुरजन सिंह तथा सत्येंद्र मोहन त्यागी, पंतनगर, 1975

298. प्रायोगिक दुग्ध उत्पादन विनिर्माण — सुरजन सिंह तथा सत्येंद्र मोहन, पंतनगर, 1975

299. पशुपोषण एवं डेरी रसायन — डी एन. पांडेय, जयप्रकाश नाथ एंड कंपनी, मेरठ, 1976

300. घी बनाने की परत विभाजन विधि — एस.सी.रे. कृषि अनु. दिल्ली, 1977

301. दुग्ध संभरण से संबंधित जीवाणु — संपादक चंद्रवीर शर्मा, पंतनगर, 1980

302. डेरी रसायन विज्ञान — सिवाश्रय सिंह, पंतनगर, 1984

सूरण आदि कंदों के कटे स्थानों पर गोबर मिला शहद या घी से लेप करें।

303. डेरी, पशु प्रजनन एवं प्रसूति विज्ञान – रामजीत शर्मा तथा रामप्रकाश चौधरी, पंतनगर, 1985

304. डेरी प्रौद्योगिकी – एम.पी. गुप्ता, रंजना प्रकाशन मंदिर, आगरा, 1989

305. दुग्ध उत्पादन–एक विवेचन – वीरेंद्र कुमार दुबे, हरियाणा साहित्य अकादमी, 1989 (दि्.स.)

मधुमक्खी, मत्स्य पालन

306. मधु उत्पादन का सही आरंभ – बी.एल. रावत, मौनालय, रानीखेत, 1986

307. रोचक मौन पालन – बी.एल. रावत, मौनालय, रानीखेत, 1986

308. शहद और दीर्घ जीवन – बी.एल. रावत, मौनालय, रानीखेत, 1986

309. मधुमक्खी पालन – बी. पी. दति, उद्यम प्रकाशन, नागपुर, 1972

310. सफल मौन पालन – बी.एस. रावत, मौनालय, रानीखेत, 1976

311. मौन पालन की प्रश्नोत्तरी – बी. एस. रावत, मौनालय, रानीखेत, 1978

312. उत्तर प्रदेश में मत्स्य विकास, मत्स्य विभाग, उ.प्र. लखनऊ, 1966

313. मिश्रित मछली पालन – बी. आर. पी. सिन्हा और दिलीप कुमार, कृषि अनु. दिल्ली, 1979

विविध

314. जीव रसायन (भाग 3) – शिवनाथ प्रसाद, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1972-73

315. जीव रसायन एवं डेरी रसायन – दयाराम शर्मा, कुक्का पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1976

316. जीव रसायन की रूपरेखा – अनु. कॉन एवं स्टम्प, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, 1972

317. जीव रसयान – विनय सिंह, उ. प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ

318. कृषि जीव रसायन – त्रिपाठी एवं दिग्विजय सिंह, भारती भंडार मेरठ

1990 के दशक से आगे

विगत 10-12 वर्षों में कृषि विषयक अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं। इनमें कीटनाशी रसायन, भूमि प्रबंधन, मृदा प्रदूषण, जैव प्रौद्योगिकी आदि नवीन विषयों का समावेश हुआ है। कृषि पारिभाषिक शब्दावली तथा पारिभाषिक कोश भी प्रकाशित हुए हैं। इन सबकी पूरी सूची देने से पुस्तक का कलेवर बढ़ जाता है इसलिए सूची नहीं दी जा रही है।

कृषि साहित्य ने कृषि में हुई क्रांति को पूरी तरह से चित्रित किया है और प्रगतिशील कृषकों ने इससे पूरा-पूरा लाभ उठाया है।

□

परिशिष्ट

परिशिष्ट-I

पृथ्वी सूक्त में कृषि ज्ञान

अथर्व वेद के द्वादश कांड के अंतर्गत पृथिवी सूक्त (मातृभूमि का सूक्त) में 63 मंत्र हैं जिनमें कम से कम 32 ऐसे हैं जो आज के ज्ञात वैज्ञानिक तथ्यों के अनुकूल हैं। अंग्रेज़ी मोनियर विलियम्स के के कोश में पृथिवी यानी भूमि की तीन अंग्रेज़ी पर्याय दिए हैं – Earth, Soil और Ground. इनमें Land शब्द भी जोड़ा जा सकता है। आज के मृदा विज्ञान (Soil Science) में ये चारों शब्द मान्य हैं।

पृथिवि सूक्त माता के रूप में पृथिवी की स्तुति मात्र नहीं है, उसमें तत्कालीन ज्ञान गांभीर्य मिलता है। पृथिवी सूक्त में पृथ्वी को पर्वत, समुद्र, वनस्पति तथा सस्य से युक्त तो कहा ही गया है, उसके साथ ही उसके अंतरस्थ उसके भीतर छिपी अग्नि और रत्नों का भी उल्लेख है।

पृथिवी सूक्त का सबसे प्रधान मंत्र बारहवाँ है, जो मृदा वैज्ञानिकों की जबान पर आ जाता है और जिसमें पृथ्वी को माता कहा गया है –

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।।

"भूमि हमारी माता है, हम उस पृथिवी के पुत्र हैं। जल की वृष्टि करने वाले मेघ हमारे पिता हैं। वह हमारा निश्चय पालन करें।"

जब हम पृथ्वी को माता और मेघ को पिता कहते हैं तो पृथ्वी के साथ मेघ का अटूट संबंध स्थापित करके पृथ्वी अर्थात् भूमि पर वर्षा होने से सभी प्रकार के अन्नों के उपजने और उससे मानवों के भरण-पोषण की बात करते हैं। पुत्र वह है जो माता के दुःखों को दूर करे और पर्जन्य पिता रूप में सस्य

संपत्ति से पालन करने वाला है। एक मंत्र में कहा गया है –

"जैसे माता पुत्र को दूध देती है, वैसे ही पृथ्वी हम सब पुत्रों को खाने पीने की वस्तु प्रदान करें।"

सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः (10)

इसी ऋण से उऋण होने के लिए ऋषि प्रार्थना करते हैं –

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनंति मा
त्विपीमानस्मि जूतिमानवान्यान हन्मि दोघतः (58)
शान्ति वा सुरभिः स्योना कीलालोघ्नी पयस्वती।
भूमिरधि ब्रवीतु में पृथिवी पयसा सह (59)

"हम जो कुछ भी भाषण करेंगे वह सब हमारी मातृ भूमि के लिए हितकारी होगा, जो कुछ देखेंगे वह सब भी मातृ भूमि के लिए सहायक होगा। इसी प्रकार हमारे सारे कार्य मातृ भूमि ही को अर्पण होंगे। हम तेजस्वी और बुद्धिमान हों, जो शत्रु हमारी मातृ भूमि का दोहन करेंगे उनका हम नाश करेंगे।"

"शांति, सुख, अन्न, जल आदि देने वाली हमारी मातृ भूमि हमें भोग के सभी पदार्थ और ऐश्वर्य देने वाली हो, और इस तरह और हमारी रक्षा करती रहे।"

पृथ्वी की रचना

पृथ्वी शिला, पर्वत, पत्थर और धूलि से बनी है। इसमें सोने की (हिरण्यवक्षसे) तथा रत्नों की खाने हैं।

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृताधृता
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः (26)
निधिं विभ्रती बहुधा गुहा बसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे (44)

विस्तार

इस पृथ्वी पर सागर, महासागर, नद, नदी, तालाब, कुएँ, बावली, नहर, झीलें इत्यादि जल के अनेक साधन हैं जिससे सभी तरह के अन्न पैदा किए

जाते हैं। इस पर खेती करने वाले उद्यमी पुरुष विकास करते हैं।

यस्यां समुद्र उत सिंधुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेयेदधातु (3)

पृथ्वी पहले जल के भीतर समुद्र में थी। इसका अंतर्भाग अमृत सदृश सत्य संकल्प के बल से व्याप्त है, यह भूमि महत् आकाश में है।

यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरंवचरन् मनीषिणः
यस्या हृदयं परमे व्योमंत्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः (8)

यह पृथ्वी पहाड़, बर्फ से ढके पर्वत और वन से युक्त है। यह कृषि कर्म के उपयुक्त (कृष्णाम्), वृक्षादि को उपजाने वाली (रोहिणीम्), सब तरह का रूप धारण करने वाली (विश्वरूपाम्), स्थिर (ध्रुवम्), अतीव विरतृत (पृथिवी), अक्षत है।

गिरियस्ते पर्वता हिमवंतोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिंद्रगुप्ताम (11)

पृथ्वी पर जंतु/वनस्पतियाँ

पृथ्वी पर जड़ तथा चेतन दो प्रकार के जीव बताए गए हैं – जिनमें दो पावों वाले (द्विपद), चार पावों वाले (चतुष्पद) चेतन हैं। इनमें साँप, हिंस्र जीव, शिकारी जानवर, भेड़िए, कुत्ते तथा वनस्पति, पेड़-पौधे और लताएँ (जड़) भी हैं (46, 49)। इतना ही नहीं, आकाशचारी हंस भी हैं –

त्वज्जातास्त्वयि चरंति मर्त्यास्त्वं
बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः (15)
यां द्विपादः पक्षिणः संपतंति
हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि (51)
यस्यां वृक्षावानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठंति विश्वहा (27)

पृथ्वी पर नाना प्रकार की औषधियाँ भी पाई जाती हैं। (नानावीर्या औषधीयां बिभर्ति) (21)

वनस्पतियों के प्रसंग में ऋषि गण धूल उड़ाती हुई हवा, या पेड़ों को उखाड़ती हुई हवा का वर्णन करना नहीं भूले। यही नहीं, दावाग्नि का भी उल्लेख आया है –

यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः (51)

इस तरह पृथ्वी सभी प्रकार के मधुर तथा हितकर पदार्थ देने वाली है – मधुप्रियं दुहाम (7)।

उसमें कृषि होती है और कृषि से अन्न उत्पन्न होता है। कृषि करने के लिए ऊँची नीची भूमि को हल से समतल करके बोने का भी स्पष्ट उल्लेख है। साथ ही यह भी कहा गया है कि पृथ्वी के मर्म स्थान पर चोट नहीं पहुँचाना है।

यत ते भूमेविखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वारी मा ते हृदयमर्पिपम् (35)

जिन अन्नों को पृथ्वी से उत्पन्न बताया गया है वे हैं – चावल (धान), गेहूँ, जौ। इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

यस्यामन्नं ब्रीहियवौ यस्या इमाः पंच कृष्टयः (42)।

पृथ्वी के नाम एवं गुण

पृथ्वी को अनेक नामों से संबोधित किया गया है (सूक्त 6,11, 29, 59) बभ्रुं (पालन पोषण करने वाली), रोहिणीं, (वृक्षों को उत्पन्न करने वाली) ध्रुवाम (स्थिर), पृथ्वी (विस्तार वाली), विश्वंभरा (सबका पोषण करने वाली), बसुधा (वसुओं के धारण करने वाली), हिरण्य वक्ष (स्वर्ण से युक्त), जगतो निवेशिनी, कामदुघा, विमृग्वरी (खोजने योग्य), क्षमा, भूमि, शांतिवा, स्योना, कीलालोपनीपयस्वता।

ये सारे नाम सार्थक हैं। इतने पर भी पृथ्वी के कुछ प्रमुख गुणों का स्थान-स्थान पर स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

यथा – यह सब औषधियों (वनस्पति, वृक्ष, लता आदि) की माता, विस्तीर्ण

लंबी चौड़ी स्थिर पृथ्वी सत्य, ज्ञान, शूरता, वीरता आदि से पालित पोषित है।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां पृथिवीं धर्मणाधृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा (17)।

पृथ्वी के भीतर अग्नि है। पृथ्वी में ही नहीं, औषधियों में, वर्षा के जल में भी अग्नि है। पशुओं में भी अग्नि है जिससे भोजन पचता है।

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वामग्निमापोविभ्रत्यग्नरश्मसु
अग्निरंतः पुरुषेषु गौष्वश्वेष्वग्नयः (19)।

हिलते-डुलते बादलों में भी बिजली रूप में अग्नि है (37), पृथ्वी पर न केवल पर्जन्य से अपितु यज्ञ होने से उत्तम वृष्टि होती है, जिससे विपुल अन्न उत्पन्न होता है जिसे खाकर मानव जीवित रहते हैं –

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हत्यमरंकृतम्
भूम्यां मनुष्या जीवंति स्वधयान्नेन मर्त्याः (22)

पृथ्वी में गंध भी बताई गई है। वही औषधियों में, जल में, समाई है।

यस्ते गंधः पृथिवि संबभूव यं विभ्रत्योषधयो यमापः (23)

पृथ्वी पर क्रमशः छह ऋतुएँ आती रहती हैं। ये हैं – ग्रीष्म, वर्षा शरद्, शिशिर, हेमंत तथा वसंत।

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षणि शरद्धेमंतः शिशिरोवसंतः।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् (36)

पृथ्वी में गुरु पदार्थों को अपनी ओर आकृष्ट करने की इच्छाशक्ति है –

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् (48)

मैथिलीशरण गुप्त ने "धारित्री" नामक कविता लिखी है –

लेकर एक बीस दे देना, तेरा ही है काम धरित्री

अथवा

किसी प्रकार की फसल की आशा व्यर्थ है। दलदल में न तो छंटाई की

लोट-पोट कर जिसकी रज पर बड़े हुए हैं

पृथिवी सूक्त का भी तो यही वाक्य है –

त्वज्जातास्त्वयि चरंति मर्त्यास्त्वंबिभर्षिद्विपदस्त्वं चतुष्पदः (15)

यदि प्रचीन भारत में कृषि विज्ञान के विकास पर विहंगावलोकन करें तो ज्ञात होता है कि भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए खाद का प्रयोग हुआ। सत्रह प्रकार के धान्य उपजाए गए, कृषि कर्म को प्रधानता दी गई। पृथ्वी के प्रति माता के रूप में जो आदर-भाव वैदिक काल में था वही सोलहवीं-सत्रहवीं सदी तक लोकप्रचलित घाघ-भड्डरी की कहावतों में पाया गया है – उत्तम खेती मध्यम बान। किंतु आगे चलकर दुर्भिक्ष और फिर गदर ने कृषकों की रीढ़ तोड़ दी। उनका भूमि के प्रति अब जो लगाव दीख पड़ता है वह लोभपूर्ण है। भूमि को अधिकाधिक दुहने-शोषित करने का प्रयास है। किंतु यह वैज्ञानिक उन्नति का प्रतिफल है। बुद्धिमानी इसी में है कि अब पुनः प्रकृति की ओर लौटा जाए। अथर्व वेद का पृथिवी सूक्त इसमें मार्गदर्शक बन सकता है।

पृथ्वी को हम सभी प्रकार से सजीव पूज्य माता तुल्य मानकर उसके प्रति सद्व्यवहार करें। तभी वह अपने पुत्रों पर दया दिखा सकती है। मेघ भी तभी उन पर दया दिखावेगा। भूमि, वर्षा और अन्न की अन्योन्याश्रितता समाज के माता-पिता पुत्र संबंध की ही द्योतक है। इसे गंभीरता से समझने की आवश्यकता है।

निर्देश : श्रीपाद्दामोदर सातवलेकर कृत अथर्व वेद भाष्य

* हलायुध कोश में पृथ्वी के 37 पर्याय मिलते हैं –

भूर्भूमिववसुधा वनिर्वसुमती धात्री धरित्री धरा।
गौ गोंत्रा जगती रसा क्षितिरिला क्षोणा क्षमाक्ष्माचला।"
कुः पृथ्वी पृथिवी स्थिरा व धरणी विश्वंभरा मेदिनी।
ज्यानंत विपुला समुद्रवसना सर्व सहोर्वो मही।
काश्यपीभूत धात्री च रत्नगर्भा वसुंधरा।
धरा धारा च विज्ञेयातद्विशेषन्निर्बोधता।।

□

परिशिष्ट-II

बाण द्वारा हर्ष चरित में (7/227-30) विंध्याटवी के वनग्राम (जंगली देहात) का वर्णन

"गांव के चारों ओर वन प्रदेश फैले थे, खेत बहुत विरल थे। किसान हल बैल के बिना ही कुदाल से धरती तोड़ कर बीज छितरा कर बो लेते थे। जंगली जानवरों का उपद्रव होता रहता था। जंगली रास्तों पर पानी के प्याउओं का विशेष प्रबंध था। पास-पड़ोस के लोग कोयला फूँकने और लकड़ी काटने का काम करते थे। काफी लोग छोटे-बड़े जानवरों के शिकार से पेट पालते थे। पुरुष जंगल में होने वाले विविध सामान के बोझ लेकर और स्त्रियाँ जंगली फल बटोर कर इधर-उधर बेच आती थीं। थोड़े से स्थान में हल-बैल की भी खेती थी। यहाँ किसानी का धंधा करने वाले किसान बंजर धरती तोड़ कर उसमें खाद डालकर खेतों को उपजाऊ बना रहे थे। ....लोग साठी चावल का भूसा जलाकर धुआँ करने के आदी थे। कभी-कभी उसकी आग फैलकर जंगली धान्य के खलिहान तक पहुँच जाती थी, जिससे वे धुमैले लगते थे।.... वनग्राम के चारों ओर घोर जंगल के सिवाय कुछ न था। इसलिए लोग कुटुंब का पेट पालने के लिए व्याकुल रहते थे। इसी चिंता में दुर्बल किसान केवल कुदाली से गोड़ कर परती धरती तोड़ते और खेत के टुकड़े निकाल लेते थे। खेती के लिए बैल न थे। भूमि कास से भरी हुई थी। काली मिट्टी की पटपड़ तह लोहे के तवे की तरह कड़ी थी। कुछ भी पैदा करने के लिए किसानों को छाती फाड़ कर कुदाल भाँजनी पड़ती थी। वही उनका सहारा था।

खेतों के पास ऊँचे मचान बँधे कह रहे थे कि वहाँ जंगली जानवर लगते थे।.... गांव के लोग वन की पैदावार के बोझ सिर पर उठाए जा रहे थे। कई लोग रुई, अलसी, सन के मुट्ठों को बोझ लिए थे।

.....जंगल के कुछ हिस्से में झूम की खेती थी, जहाँ संभवतः आदिमवासी हल के बिना सिर्फ कुदालों से गोड़ते थे लेकिन कुछ हल बैल की खेती करने वाले किसान थे। उनके पास तगड़े बैलों की जोते थीं। वे पुरानी खाद, कूड़े

के ढेर उन बढ़िया गाड़ियों पर, जिनके डगमग पहिए घिसटते हुए चूँ-चूँ कर रहे थे और कूड़े धूल के लथपथ, जिनके बैलवान बैल को ललकार रहे थे इन्हें लादकर उन सूखे खेतों में ले जाकर डाल रहे थे जिनकी उपजाऊ शक्ति कम हो गई थी।

गन्ने के खूब लहलहाते ईख के बाड़े गाँव की हरियाली बढ़ा रहे थे। .....जंगली भैसों के लंबे हड्ड खेतों में बिजूके की तरह गाड़े गए थे, उनसे डरे हुए खरहे गन्ने के ऊँचे अंकुरों को कुतर डालते थे।"

इस तरह बाण के वर्णन के अनुसार वन्य भूमि में की जाने वाली कृषि तीन प्रकार की थी –

1. केवल कुदाली से परती और कठोर जमीन तोड़कर की जाने वाली खेती।
2. झूम खेती।इसमें भी कुदाल से भूमि गोड़कर आदिवासियों द्वारा खेती की जाती थी।
3. ग्राम्य कृषि-हल बैलों द्वारा खेती। इसमें भूमि की उर्वरता का ध्यान रखा जाता। खाद का प्रयोग होता था। जंगलों को जलाने से भी मिट्टी उपजाऊ हो जाती थी। कालिदास ने रघुवंश में लिखा है – कृष्यांदहंनपिखलु क्षितिमिंधने दो बीज प्ररोह जननीं ज्वलनं करोति।

□

जोतना चाहिए। एक बार की जुताई सफलता लाती है, तीन बार की जुताई

परिशिष्ट - III

पारिभाषिक शब्दावली
(हिंदी-अंग्रेजी)

अकाल/दुर्भिक्ष	Famine
अजैव खादें	Inorganic manures
अन्न	Grains
अन्न संग्रह	Grain storage
उपकरण	Appliances
उर्वरक	Fertilizers
ऊसर या क्षारीय मृदाएँ	Alkali soils, Usars
ऋतुएँ	Seasons
कम्पोस्ट	Compost
कार्बनिक पदार्थ	Organic matter
कृषि पत्रकारिता	Agricultural journalism
क्षेत्र प्रयोग	Field experiment
खाद	Manure
गहरी जोत	Deep ploughing
जंगल/वन	Forests
जलवायु विज्ञान	Climatology
झुंड पुस्तिका	Herd book
दलहनी फसलें	Legumes
पशु महामारी	Rinderpest
पशुविज्ञान	Animal Sciences/Veterinary Sciences
फसलों का हेरफेर/शस्यावर्तन	Crop rotation

बाढ़	Flood
भविष्यवाणी	Forecast
भूमि	Land/Soil
भूमि प्रकार	Soil types
भूमि सर्वेक्षण	Soil survey
मेंड़ बाँधना	Bunding
मृत्तिका (चिकनी मिट्टी)	Clay
मृदा	Soil
मृदा विज्ञान	Soil Science
मौसम	Weather
वनस्पतियाँ	Vegetation

पारिभाषिक शब्दावली
(अंग्रेजी-हिंदी)

Agriculture	कृषि
Agricltural Journalism	कृषि पत्रकारिता
Alkali soils/Usars	ऊसर, क्षारी मृदाएँ
Appliances	उपकरण
Animal Science	पशुविज्ञान
Bunding	मेंड़ बाँधना
Clay	मृत्तिका
Climatatology	जलवायु विज्ञान
Compost	कंपोस्ट
Crossbreeding	संकरण
Crop rotation	शस्यावर्तन/फसलों का हेरफेर
Deep ploughing	गहरी जोत
Dry farming	शुष्क कृषि
Famine	अकाल/दुर्भिक्ष
Fertilizers	उर्वरक
Field experiments	क्षेत्र प्रयोग
Flood	बाढ़
Forecast	भविष्यवाणी
Forest	जंगल/वन
Grain storage	अन्न संग्रह
Herd book	झुंड पुस्तिका
Inorganic manures	अजैव खाद
Irrigation	सिंचाई

Land/Soil	भूमि
Legumes	दलहनी फसलें
Manure	खादें
Plough	हल
Rainfall	वर्षा
Rinderpest	पशुमहामारी
Season	ऋतुएँ
Soil	मृदा/मिट्टी
Soil Science	मृदा विज्ञान
Soil Survey	मृदा सर्वेक्षण
Soil type	भूमि प्रकार
Vegetation	वनस्पतियाँ
Weather	मौसम

□

परिशिष्ट - IV

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली-निर्माण के सिद्धांत

1. अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं :

(क) तत्वों और यौगिकों के नाम जैसे – हाइड्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड आदि;

(ख) तौल और माप की इकाइयाँ और भौतिक परिमाण की इकाइयाँ, जैसे – डाइन, कैलॉरी, एम्पियर आदि;

(ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए हैं जैसे – मार्क्सवाद (कार्ल मार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बॉयकाट (कैप्टेन बायॅकाट), गिलोटिन (डॉ. गिलोटिन), गैरीमैंडर (मि. गेरी), एम्पियर (मि. एम्पियर), फ़ारेनहाइट तापक्रम (मि. फारेनहाइट) आदि;

(घ) वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान, भूविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली;

(ड.) स्थिरांक जैसे पाई, जी, आदि;

(च) ऐसे अन्य शब्द जिनका आमतौर पर सारे संसार में व्यवहार हो रहा है, जैसे रेडियो, पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि;

(छ) गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक, चिह्न और सूत्र, जैसे – साइन, कोसाइन, टेन्जेन्ट, लॉग आदि (गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोम या ग्रीक वर्णमाला के होने चाहिए)।

2. प्रतीक, रोमन लिपि में अंतर्राष्ट्रीय रूप में ही रखे जाएँगे परंतु संक्षिप्त रूप नागरी और मानक रूपों में भी, विशेषतः साधारण तोल और माप में लिखे जा सकते हैं, जैसे–सेंटीमीटर का प्रतीक cm हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु नागरी संक्षिप्त रूप से.मी. भी हो सकता है। यह सिद्धांत बाल-साहित्य और लोकप्रिय पुस्तकों में अपनाया जाएगा, परंतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मानक पुस्तकों में केवल अंतर्राष्ट्रीय प्रतीक, जैसे cm ही प्रयुक्त करना चाहिए।

3. ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जैसेः क, ख ग या अ, ब, स परंतु त्रिकोणमितीय संबंधों में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर ही प्रयुक्त करने चाहिए, जैसे– साइन A. कॉस B आदि।

4. संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यतः अनुवाद किया जाना चाहिए।

5. हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार-विरोधी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

6. सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो :–

(क) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और

(ख) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।

7. ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे, telegraph/telegram के लिए तार, continent के लिए महाद्वीप, post के लिए डाक आदि इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिए।

8. अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के लिए विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे टिकट, सिगनल, पेंशन, पुलिस, ब्यूरो, रेस्तरां, डीलक्स आदि इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए।

9. अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरणः अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णों में नए चिह्न व प्रतीक शामिल करने की आवश्यकता पड़े। शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप होना चाहिए और उनमें ऐसे परिवर्तन किए जाएं जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों।

10. **लिंगः** हिंदी में अपनाए गए अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण न होने पर, पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए।

11. **संकर शब्दः** पारिभाषिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे guaranteed के लिए गारंटिड, classical के लिए क्लासिकल, codifier के लिए कोडकार, आदि के रूप सामान्य और प्राकृतिक भाषाशास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्दरूपों को पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं तथा सुबोधता, उपयोगिता और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए।

12. **पारिभाषिक शब्दों में संधि और समासः** कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के बीच हाइफन लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द-रचनाओं को सरलता और शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी। जहां तक संस्कृत पर आधारित 'आदिवृद्धि' का संबंध है, 'व्यावहारिक', 'लाक्षणिक' आदि प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों में आदिवृद्धि का प्रयोग ही अपेक्षित है, परंतु नवनिर्मित शब्दों में इससे बचा जा सकता है।

13. **हलंतः** नए अपनाए हुए शब्दों में आवश्यकतानुसार हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।

14. **पंचम वर्ण का प्रयोगः** पचंम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए परंतु lens. patent आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस, पेटेंट या पेटेण्ट न करके लेन्स, पेटेन्ट ही करना चाहिए।

□

Principles for evolution of terminology approved by the commission for scientific and techinical terminology

1. 'International terms' should be adopted in their current english forms, as far as possible, and transliterated in Hindi and other Indian languages according to their genius. The following should be taken as examples of international terms :-

(a) Names of elements and compounds, e.g. Hydrogen, Carbon dioxide, etc.,

(b) Units of weights, measures and physical quantities, e.g. dyne, calorie, ampere, etc.,

(c) Terms based on proper names e.g. marxism (Karl Marx), Braille (Braille), boycott (Capt. Boycott), guillotine (Dr. Guillotin), gerrymander (Mr. Gerry), ampere (Mr. Ampere), fahrenheit scale (Mr, Fahrenheit), etc.,

(d) Binomial nomenclature in such sciences as Botany, Zoology, Geology, etc.,

(e) Constants, e.g. II, g. etc.,

(f) Words like Radio, Petrol, Radar, Electron, Proton, Neutron, etc., which have gained practically world-wide usage,

(g) Numerals, symbols, signs and formulae used in mathematics and other sciences e.g., sin, cos, tan, log etc. (Letters used in mathematical operations should be in Roman or Greek alphabets).

2. The symbols will remain in international form written in Roman script, but abbreviations may be written in Nagari and standardised form, specially for common weights and measures, e.g. the symbol 'cm' for centimetre will be used as such in Hindi, but the abbrevation in Nagari may be से.मी. this will apply to books for children and other popular works only, but in standard works of science and technology, the international symbols only, like cm., should be used.

3. Letters of Indian scripts may be used in-geometrical figures e.g., क,ख,ग or अ,ब,स, but only letters of Roman and Greek alphabets should be used in trigonometrical relations e.g., sin A, cos B etc.

4. Conceptual terms should generally be translated.

5. In the selection of Hindi equivalents simplicity, precision of meaning and easy intelligibility should be born in mind. Obscurantism and purism may be avoided.

6. The aim should be to achieve maximum possible identity in all Indian languages by selecting terms:-

(a) common to many of the regional languages as possible, and

(b) based on Sanskrit roots.

7. Indigenous terms, which have come into vogue in our languages for certain technical words of common use, as तार for telegraph/telegram, महाद्वीप for continent, डाक for post etc,. should be retained.

8. Such words from English, Portuguese, French, etc., as have gained wide currency in Indian languages should be retained e.g., ticket, signal, persion, police, bureau, restaurant, deluxe etc.

9. **Transliteration of International terms into Devanagari Script:** The transliteration of English terms should not be made so complex as to necessitate the introduction of new signs and symbols in the present Devanagari characters. The Devanagari rendering of English terms should aim at maximum approximation to the standard English pronunciation with such modifications as prevalent amongst the educated circle in India.

10. **Gender :** The international terms adopted in Hindi should be used in the masculine gender, usless there are compelling reasons to the contrary.

11. **Hybrid formation :** Hybrid forms in technical terminologies e.g., गारंटित for 'guaranteed', क्लासिकी for 'classical', कोडकार for 'codifier' etc., are normal and natural linguistic phenomena and such forms may be adopted in practice keeping in view the requirements for technical terminology, viz., simplicity, utility and precision.

12. **Sandhi and samasa in technical terms :** Complex forms of Sandhi may be avoided and in cases of compound words, hyphen may be placed in between the two terms, because this would enable the users to have an easier and quicker grasp of the word structure of the new terms. As regards आदिवृद्धि in Sanskrit-based words, it would be desirable to use आदिवृद्धि in prevalent Sanskrit tatsama

words e.g., व्यावहारिक, लाक्षणिक etc. but may be avoided in newly coined words.

13. **Halanta :** Newly adopted terms should be correctly rendered with the use of 'hal' wherever necessary.

14. **Use of Pancham Varna :** The use of अनुस्वार may be preferred in place of पंचम वर्ण, but in words like 'lens', 'patent' etc., the transliteration should be लेन्स, पेटेन्ट and not लेंस, पेटेंट or पेटेण्ट.

□

परिशिष्ट-V

मानक देवनागरी वर्णमाला तथा वर्तनी

हिंदी में लेख या कोई भी रचना लिपिबद्ध करते समय कुछ उलझनें सामने आतीं हैं, जैसे –

(1) अ, झ, ण, ल, क्ष लिखें या अ, भ, रा, ल, ज्ञ ?

(2) कुछ अक्षरों को पढ़ने में भ्रम होता है, जैसे म-भ, ध - घ, ख - रव आदि। इन्हें स्पष्ट अलग-अलग कैसे लिखें ?

(3) कुछ संयुक्त अक्षर अलग-अलग ढंग से लिखे जाते हैं जैसे - शक्त, शक्त-शक्त, शुक्र-शुक्र, चिह्न-चिह्न, वित्त-वित्त, आदि। इनमें कौन-सा रूप लिखें ?

(4) कंठ लिखें या कण्ठ, गंगा या गाङ्गा या गङ्गा, पेटेंट-पेटेन्ट या पेटेण्ट ?

(5) हंसना लिखें या हँसना, मुँह या मुंह ?

(6) रामश्याम लिखें या राम-श्याम ? द्वयंक या द्वि-अंक ?

(7) नई-नए लिखें या नयी-नये ? विधायी या विधाई ?

(8) बिल्कुल या बिलकुल ? सर्दी या सरदी ? बरफ या बर्फ ?

ऊपर विभिन्न कोटियों के शब्द-रूपों में भ्रममूलक स्थिति की ओर संकेत किया गया है। स्पष्ट है कि देवनागरी वर्णमाला और वर्तनी में कुछ सुधार की गुंजाइश थी ताकि उपर्युक्त किस्म के सभी भ्रमों के संबंध में एकसमान निर्णायक निर्देशों का सर्वत्र पालन हो।

लेखकों को भ्रमित करने के साथ ही उपर्युक्त भिन्न-भिन्न शब्दरूपों या अक्षररूपों का प्रभाव टाइपराइटर, टेलीप्रिंटर तथा कंप्यूटर आदि पर स्पष्ट दृष्टिगोचर है। टाइपराइटरों आदि की स्थिति इस संबंध में विचारणीय-शोचनीय है। हम जानते हैं कि अंग्रेजी के टाइपराइटर केवल 26 कुंजी पटलों (21 व्यंजन और 5 स्वर) तक सीमित हैं। अंग्रेजी के अक्षरों में a e i o u जोड़ने हों तो ये स्वर अक्षर के आगे-पीछे टाइप कर लिए जाते हैं लेकिन हिंदी के

अक्षरों में ये स्वर आगे-पीछे, नीचे-ऊपर कहीं भी लगाए जाते हैं। फिश्र हिंदी में स्वर, व्यंजन, मात्राएँ, अनुस्वार, विसर्ग, अर्धचंद्र, हल्-चि न आदि की संख्या कुल मिलाकर लगभग 60 हो जाती है। इसमें संयुक्त व्यंजन द्य, त्र, ज्ञ, श्र भी जोड़े जाएंगे और कुछ व्यंजनों के अर्ध-रूप (क, ष, ट, न आदि) भी जोड़े जाएंगे। इस तरह हिंदी टाइपराइटर में कुंजियों की संख्या स्वयमेव बहुत अधिक हो जाती है। इसलिए यह अनिवार्य हो जाता है कि हिंदी की वर्तनी में सुधार करके इन कुंजियों की संख्या को कम से कम करने का प्रयास किया जाए। उदाहरणार्थ, क्त, त्त, क्र आदि अपनाकर क्त, त्त, त्र कुंजियों को कम किया जा सकता है। इसी तरह द्य (द्‌य), ह्म (ह्‌म), द्व (द्‌व), द्ध (द्‌ध), ह्व (ह्‌व), ह्ल (ह्‌ल), ह्य (ह्‌य) आदि में कोष्ठक में दिए गए संयुक्ताक्षर को अपनाकर कुंजियों की बचत हो सकती है। जैसा ऊपर बताया गया है कि हिंदी वर्णों में मात्राएँ ऊपर-नीचे भी लगती हैं जबकि अंग्रेजी के वर्णों में केवल अक्षर के बाद में। ऐसी स्थिति में अगर हम एक अक्षर के ऊपर दूसरा अक्षर लिखकर फिर उसके ऊपर या नीचे मात्रा भी लगाएँ तो टाइपराइटर असमर्थता व्यक्त कर देगा। उदाहरणार्थ 'टट्टू' में ऊ की मात्रा। अतः यह भी उचित है कि अक्षर-संयोग करते समय अर्थात् संयुक्ताक्षरों को लिखते समय उन्हें ऊपर-नीचे न लिखा जाए। इस प्रकार पक्का-पक्का, दफर - दफ्तर, लट्ठा - लट्‌ठा आदि में परवर्ती रूप का प्रोग किया जा सकता है।

देवनागरी वर्णमाला के मानकीकरण की आवश्यकता की दृष्टि से अनेक विद्वानों, भाषाविदों की समितियों ने केंद्रीय हिंदी निदेशालय के तत्वावधान में 'मानक हिंदी वर्णमाला' प्रस्तुत की है। इसके संबंध में आवश्यक संस्तुतियां नीचे दी जा रही हैं।

1 मानक हिंदी वर्णमाला

स्वर

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ

मात्राएँ

ा ि ी ु ू ृ े ै ो ौ

अनुस्वार

- (अं)

विसर्ग

: (अः)

अनुनासिकता चिह्न

ँ

व्यंजन

क	ख	ग	घ	ङ		
च	छ	ज	झ	ञ		
ट	ठ	ड	ढ	ण	ड़	ढ़
त	थ	द	ध	न		
प	फ	ब	भ	म		
य	र	ल	व		ळ	
श	ष	स	ह			

संयुक्त व्यंजन

क्ष त्र ज्ञ श्र

हल्-चिह्न

् (ड्)

गृहीत स्वन

ऑ (ॉ), ख़, ज़, फ़

देवनागरी अंक

१ २ ३ ४ ५

६ ७ ८ ९ ०

भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप

1 2 3 4 5

6 7 8 9 0

2 मानक हिंदी वर्तनी

(1) संयुक्त वर्ण

(क) खड़ी पाई जाने व्यंजन

ख्याति, लग्न, विघ्न व्यास

कच्चा, छज्जा श्लोक

नगण्य राष्ट्रीय

कुत्ता, पथ्य, ध्वनि, न्यास स्वीकृति

प्यास, डिब्बा, सभ्य, रम्य यक्ष्मा

शय्या त्र्यंबक

उल्लेख

(ख) अन्य व्यंजन

(अ) 'क' और 'फ' के संयुक्ताक्षर :

संयुक्त, पक्का, दफ्तर आदि की तरह बनाए जाएँ, न कि संयुक्त, पक्का, दफ़्तर की तरह।

(आ) ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, द, और ह के संयुक्ताक्षर हल् चिह्न लगाकर ही बनाए जाएँ, यथा :

वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या, चिह्न, ब्रह्मा आदि

(वाङ्य, लट्टू, बुड्ढा, विद्या, चिह्न, ब्रह्म नहीं)।

(इ) संयुक्त 'र' के प्रचलित तीनों रूप यथावत् रहेंगे, यथा : प्रकार, धर्म, राष्ट्र।

(ई) 'श्र' का प्रचलित रूप ही मान्य होगा। इसे 'श' के रूप में नहीं लिखा जाएगा। त + र के संयुक्त रूप के लिए त्र और त्र दोनों रूपों में से किसी एक के प्रयोग की छूट होगी।

किंतु 'क्र' को 'क्र' के रूप में नहीं लिखा जाएगा।

(उ) हल् चिह्न युक्त वर्ण से बनने वाले संयुक्ताक्षर के द्वितीय व्यंजन के साथ 'इ' की मात्रा का प्रयोग संबंधित व्यंजन के तत्काल पूर्व ही किया जाएगा, न कि पूरे युग्म से पूर्व, यथा : कुट्टिम, द्वितीय, बुद्धिमान, चिह्नित आदि (कुट्टिम, द्वितीय, बुद्धिमान, चिह्नित नहीं)।

(ऊ) संस्कृत में संयुक्ताक्षर पुरानी शैली से भी लिखे जा सकेंगे, उदाहरणार्थ — संयुक्त, चिह्न, विद्या, चञ्चल, विद्वान, वृद्ध, अ, द्वितीय, बुद्धि आदि।

(2) **हाइफन (योजक)**

हाइफन या योजक का विधान स्पष्टता के लिए किया गया है।

(क) द्वंद्व समास में दो पदों के बीच हाइफन रखा जाए, जैसे —

राम-लक्ष्मण, शिव-पार्वती,-संवाद, देख-रेख, चाल-चलन, हंसी-मज़ाक, लेन-देन, पढ़ना-लिखना, खाना-पीना,

खेलना-कूदना आदि।

(ख) तत्पुरुष समास में हाइफन का प्रयोग केवल वहीं किया जाए, जहाँ उसके बिना भ्रम होने की संभावना हो, अन्यथा नहीं, जैसे - भू-तत्व/भूतत्व। सामान्यतः तत्पुरुष समासों में हाइफन लगाने की आवश्यकता नहीं है, जैसे रामराज्य, राजकुमार, गंगाजल, ग्रामवासी, आत्महत्या आदि।

(ग) कठिन संधियों से बचने के लिए हाइफन का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे - द्वि-अक्षर, द्वि-अर्थक आदि।

(3) **अवयव**

समस्त पदों में प्रति, मात्र, यथा आदि अव्यय पृथक् नहीं लिखे जाएँगे, जैसे - प्रतिदिन, प्रतिशत, मानवमात्र, निमित्तमात्र, यथासमय, यथोचित आदि। यह सर्वविदित नियम है कि समास होने पर समस्त पद एक माना जाता है। अतः उसे व्यस्त रूप में न लिखकर एक साथ लिखना ही संगत है।

(4) **नई/नयी, हुवा/हुआ आदि**

(क) जहां श्रुतिमूलक य, व, का प्रयोग विकल्प से होता है, वहां न किया जाए, अर्थात् *किए-किये, नई-नयी, हुआ-हुवा* आदि में से पहले स्वरात्मक रूप का ही प्रयोग किया जाए। यह नियम क्रिया, विश्लेषण, अव्यय आदि सभी रूपों और स्थितियों में लागू माना जाए, जैसे — *दिखाए गए, राम के लिए, पुस्तक लिए हुए, नई दिल्ली* आदि।

(ख) जहां 'य' श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न होकर शब्द का ही मूल तत्व हो वहाँ कैकल्पिक श्रुतिमूलक स्वरात्मक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है, जैसे - स्थायी, अव्ययीभाव, दायित्व आदि। इन्हें स्थाई, अव्यईभाव, दाइत्व नहीं लिखा जाएगा।

(5) अनुस्वार तथा चंद्रबिंदु

अनुस्वार (.) और चंद्रबिंद (ँ) दोनों प्रचलित रहेंगे।

(क) संयुक्त व्यंजन के रूप में जहां पंचमाक्षर के बाद सवर्गीय शेष चार वर्णों में से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण/लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए जैसे — *गंगा, चंचल, ठंडा, संध्या, संपादक* आदि। इन शब्दों में पंचमाक्षर के बाद उसी वर्ग का वर्ण आगे आया है, अतः पंचमाक्षर के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग होगा (गङ्गा, चञ्चल, ठण्डा, सन्धया, सम्पादक नहीं)। यदि पंचमाक्षर दुबारा आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा, जैसे — *वाङ्मय, अन्य, अन्न, सम्मेलन, सम्मति, चिन्मय, उन्मुख* आदि। अतः वांमय, अंय, अंन, संमेलन, संमति, चिंमय, उंमुख, आदि रूप ग्राह्य नहीं हैं।

(ख) चंद्रबिंदु के बिना कभी-कभी अर्थ में भ्रम की गुंजाइश रहती है, जैसे — हंस : हँस, अंगना : अँगना आदि में। अतएव ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए चंद्रबिंदु का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। किंतु जहां (विशेषकर शिरारेरखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के साथ) चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो और चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु (अनुस्वार चिह्न) का प्रयोग किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहाँ चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु के प्रयोग की छूट दी जा सकती है, जैसे - *नहीं, में, मैं*। कविता आदि के प्रसंग में छंद की दृष्टि से चंद्रबिंदु का यथास्थान अवश्य प्रयोग किया जाए। इसी प्रकार छोटे बच्चों की प्रवेशिकाओं में जहां चंद्रबिंदु का उच्चारण सिखाना अभीष्ट हो, वहाँ उसका यथास्थान सर्वत्र प्रयोग किया जाए, जैसे — *कहाँ, हँसना, आँगन, सँवारना, मैं, में, नहीँ,* आदि।

(6) विदेशी ध्वनियाँ

(क) अरबी-फारसी या अंग्रेजी मूलक वे शब्द जो हिंदी के अंग बन

चुके हैं और जिनकी विदशी ध्वनियों का हिंदी ध्वनियों में रूपांतर हो चुका है, हिंदी रूप में ही स्वीकार किए जा सकते हैं, जैसे - *कलम, किला, दाग* आदि (*क़लम, क़िला, दाग़* नहीं)। पर जहाँ उनका शुद्ध विदेशी रूप में प्रयोग अभीष्ट हो अथवा उच्चारणगत भेद बताना आवश्यक हो वहां उनके हिंदी में प्रचलित रूपों में यथास्थान नुक्ते लगाए जाएँ, जैसे - *खाना : ख़ाना, राज : राज़, फन : हाइफ़न*। सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि अरबी-फारसी एवं अंग्रेजी की मुख्यतः पांच ध्वनियां (*क़, ग़, ख़, ज़, और फ़*) हिंदी में आई है जिनमें से दो (क़ और ग़) तो हिंदी उच्चारण (क, ग) में परिवर्तित हो गई है, एक (ख़) लगभग हिंदी 'ख' में खपने की प्रक्रिया में है और शेष दो (ज़, फ़) धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खोने/बनाए रखने के लिए संघर्षरत है।

(ख) अंग्रेज़ी के जिन शब्दों में अर्धविवृत 'ओ' ध्वनि का प्रयोग होता है, उनके शुद्ध रूप का हिंदी में प्रयोग अभीष्ट होने पर 'आ' की मात्रा (ा) के ऊपर अर्धचंद्र का प्रयोग किया जाए (ऑ, ॉ)। अंग्रेज़ी शब्दों का देवनागरी लिप्यंतरण इतना क्लिष्ट नहीं होना चाहिए कि उसके लिए वर्तमान देवनागरी वर्णों में अनेक नए संकेत-चिह्न लगाने पड़ें। अंग्रेज़ी शब्दों का देवनागरी लिप्यंतरण मानक अंग्रेज़ी उच्चारण के अधिक-से-अधिक निकट होना चाहिए। उसमें भारतीय शिक्षित समाज में प्रचलित उच्चारण-संबंधी थोड़े-बहुत परिवर्तन किए जा सकते हैं। अन्य भाषाओं के शब्दों के संबंध में भी यही नियम लागू होना चाहिए।

हिंदी के कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनके दो-दो रूप बराबर चल रहे हैं। विद्वत्समाज में दोनों रूपों की एक-सी मान्यता है। फिलहाल इनकी एकरूपता आवश्यक नहीं समझी गई है। कुछ उदाहरण हैं - *गरदन/गर्दन, गरमी/गर्मी, बरफ/बर्फ, बिलकुल/बिल्कुल, सरदी/सर्दी, कुरसी/कुर्सी, भरती/ भर्ती, फुरसत/फुर्सत, बरदाश्त/बर्दाश्त, वापिस/वापस, आखीर/आखिर, बरतन/बर्तन, दोबारा/दुबारा, दूकान/दुकान, बीमारी/बिमारी* आदि।

(7) हल् चिह्न

संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी में सामान्यतः संस्कृत रूप ही रखा जाए, परंतु जिन शब्दों के प्रयोग में हिंदी में हल् चिह्न लुप्त हो चुका है, उनमें उसको फिर से लगाने का यत्न न किया जाए, जैसे - 'महान', 'विद्वान' आदि के 'न' में।

(8) स्वन-परिवर्तन

संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी को ज्यों-का-त्यों ग्रहण किया जाए। अतः *'ब्रम्हा'* को *'ब्रम्हा'*, *'चिहृन'* को *'चिन्ह'*, *'उऋण'* को *'उरिण'* में बदलना उचित नहीं होगा। इसी प्रकार ग्रहीत, दृष्टव्य, प्रदर्शिनी, अत्याधिक, अनाधिकार आदि अशुद्ध प्रयोग ग्राह्य नहीं हैं। इनके स्थान पर क्रमशः गृहीत, द्रष्टव्य, प्रदर्शनी, अत्यधिक, अनधिकार ही लिखना चाहिए। जिन तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों के संयोग की स्थिति में एक द्वित्वमूलक व्यंजन लुप्त हो गया है उसे न लिखने की छूट है, जैसे - *अर्द्ध/अर्ध, उज्जवल/उज्वल, तत्व/तत्व* आदि।

(9) विसर्ग

संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है वे यदि तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए, जैसे - दुःखानुभूति। यदि उस शब्द के तद्भव रूप में विसर्ग का लोप हो चुका है तो उस रूप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा, जैसे - 'दुख-सुख के साथी'।

3. एक से सौ तक संख्यावाचक शब्दों का मानक रूप

एक	दो	तीन	चार	पाँच	छह	सात	आठ	नौ	दस
ग्यारह	बारह	तेरह	चौदह	पंद्रह	सोलह	सत्रह	अठारह	उन्नीस	बीस
इक्कीस	बाईस	तेईस	चौबीस	पच्चीस	छब्बीस	सत्ताईस	अट्ठाईस	उनतीस	तीस
इकतीस	बत्तीस	तैंतीस	चौंतीस	पैंतीस	छत्तीस	सैंतीस	अड़तीस	उनतालीस	चालीस
इकतालीस	बयालीस	तैंतालीस	चवालीस	पैंतालीस	छियालीस	सैंतालीस	अड़तालीस	उनचास	पचास
इक्यावन	बावन	तिरपन	चौवन	पचपन	छप्पन	सतावन	अठावन	उनसठ	साठ
इकसठ	बासठ	तिरसठ	चौंसठ	पैंसठ	छियासठ	सड़सठ	अड़सठ	उनहत्तर	सत्तर

इकहत्तर	बहत्तर	तिहत्तर	चौहत्तर	पचहत्तर	छिहत्तर	सतहत्तर	अठहत्तर	उनासी	अस्सी
इक्यासी	बयासी	तिरासी	चौरासी	पचासी	छियासी	सतासी	अठासी	नवासी	नब्बे
इक्यानवे	बानवे	तिरानवे	चौरानवे	पचानवे	छियानवे	सतानवे	अठानवे	निन्यानवे	सौ

□

परिशिष्ट-VI

आयोग के प्रकाशन

आयोग द्वारा प्रकाशित परिभाषा-कोशों की सूची

क्र.सं.	परिभाषा-कोश	मूल्य
1.	भूविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 284)	10.00
2.	भूविज्ञान परिभाषा-कोश-2 (सामान्य भूविज्ञान) (पृ. 196)	13.50
3.	शैलविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 195)	-
4.	प्रारंभिक पारिभाषिक रसायन कोश (पृ. 242)	3.25
5.	उच्चतर रसायन परिभाषा-कोश	17.00
6.	रसायन (कार्बनिक) परिभाषा-कोश-3 (पृ. 280)	25.00
7.	पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा-कोश (पृ. 188)	173.00
8.	प्रारंभिक पारिभाषिक कोश—गणित (पृ. 298)	18.75
9.	गणित परिभाषा-कोश (पृ. 253)	11.00
10.	आधुनिक बीजगणित परिभाषा-कोश (पृ. 159)	11.00
11.	सांख्यिकी परिभाषा-कोश (पृ. 432)	18.00
12.	भौतिकी परिभाषा-कोश (पृ. 212)	3.15
13.	आधुनिक भौतिकी परिभाषा-कोश (पृ. 290)	13.00
14.	प्राणिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 220)	10.00
15.	वनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश (1,2,3,4)	-
16.	वनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश-5 (आकारिकी तथा वर्गिकी)	-
17.	पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 161)	80.50
18.	भूगोल परिभाषा-कोश	10.00

19.	मानव-भूगोल परिभाषा-कोश (पृ. 228)	18.00
20.	मानचित्र-विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 361)	231.00
21.	गृहविज्ञान परिभाषा-कोश	-
22.	गृहविज्ञान परिभाषा-कोश-2 (पृ. 64)	9.00
23.	इलेक्ट्रॉनिकी परिभाषा-कोश (पृ. 215)	22.00
24.	तरल यांत्रिकी परिभाषा-कोश (पृ. 76)	10.00
25.	यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा-कोश (पृ. 135)	84.00
26.	सिविल इंजीनियरी परिभाषा-कोश (पृ. 112)	61.00
27.	आयुर्विज्ञान पारिभाषिक कोश (शल्यविज्ञान)	48.05
28.	इतिहास परिभाषा-कोश (पृ. 297)	20.50
29.	शिक्षा परिभाषा-कोश (पृ. 197)	13.50
30.	शिक्षा परिभाषा-कोश-2 (पृ. 205)	99.00
31.	मनोविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 142)	9.50
32.	दर्शन परिभाषा-कोश (पृ. 432)	9.75
33.	अर्थशास्त्र परिभाषा-कोश (पृ. 232)	117.00
34.	अर्थमिति परिभाषा-कोश (पृ. 245)	17.65
35.	वाणिज्य परिभाषा-कोश (पृ. 173)	24.70
36.	समाजकार्य परिभाषा-कोश (पृ. 183)	-
37.	समाजशास्त्र परिभाषा-कोश (पृ. 212)	71.40
38.	सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 287)	24.00
39.	पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 196)	49.00
40.	पत्रकारिता परिभाषा-कोश (पृ. 164)	87.50
41.	पुरातत्व परिभाषा-कोश (पृ. 391)	76.50
42.	पुरातत्व परिभाषा-कोश-2 (पृ. 453)	509.00
43.	पाश्चात्य संगीत परिभाषा-कोश (पृ. 104)	28.55
44.	भाषाविज्ञान परिभाषा-कोश खंड-1 (पृ. 212)	89.00

45.	कंप्यूटर-विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 144)	102.00
46.	राजनीतिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 356)	343.00
47.	प्रबंधविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 191)	170.00
48.	अंतर्राष्ट्रीय विधि परिभाषा-कोश (पृ. 293)	344.00
49.	कृषि-कीटविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 213)	75.00
50.	वनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 204)	75.00
51.	पादप आनुवंशिकी परिभाषा-कोश (पृ. 185)	75.00
52.	पादपरोगविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 138)	75.00
53.	मृदा विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 149)	77.00
54.	सूक्ष्मजैविकी परिभाषा-कोश (पृ. 193)	45.00
55.	भाषाविज्ञान परिभाषा-कोश खंड-2 (पृ. 259)	59.00
56.	धातुकर्म परिभाषा-कोश (पृ. 441)	278.00
57.	भारतीय दर्शन परिभाषा-कोश खंड-1 (पृ. 171)	151.00

मुद्रणाधीन

58.	विद्युत् इंजीनियरी परिभाषा-कोश	-
59.	संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा-कोश	-

आयोग द्वारा प्रकाशित शब्द-संग्रहों की सूची

क्र.सं.	शब्द-संग्रह	मूल्य
1.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान, खंड-1,2 (पृ. 2058)	174.00
2.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 819)	38.50
3.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान, खंड-1,2 (पृ. 1297)	292.00
4.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 700)	132.00
5.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : कृषि विज्ञान (पृ. 223)	278.00
6.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, भेषजविज्ञान, नृविज्ञान	239.40
7.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 240)	48.50
8.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी (पृ. 104)	48.00
9.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विद्युत्, यांत्रिक) (पृ. 566)	57.00
10.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी-2 (पृ. 186)	84.00

विषयवार शब्दावलियाँ

1.	मानविकी शब्दावली - (नृविज्ञान) (पृ. 179)	10.00
2.	कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली (पृ. 337)	87.00
3.	इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली (पृ. 378)	55.00
4.	वाणिज्य शब्दावली (पृ. 172)	259.00
5.	समेकित रक्षा शब्दावली	284.00

6. अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली	30.00
7. भाषाविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 249)	113.00
8. बृहत् प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	निःशुल्क
9. बृहत् प्रशासन शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	निःशुल्क
10. पशुचिकित्सा विज्ञान शब्दावली (पृ. 174)	82.00
11. लोक-प्रशासन शब्दावली (पृ. 98)	52.00
12. अर्थशास्त्र शब्दावली (मानविकी शब्दावली-9) (पृ. 96)	4.40
13. नृविज्ञान शब्दावली (पृ. 198)	10.00
14. वानिकी शब्दावली (पृ. 62)	8.50
15. खेलकूद शब्दावली (पृ. 103)	10.25
16. डाकतार शब्दावली (पृ. 126)	11.60
17. रेलवे शब्दावली (पृ. 56)	2.00
18. गुणता-नियंत्रण शब्दावली (पृ. 67)	38.00
19. रेशम विज्ञान शब्दावली (पृ. 85)	50.00
20. गणित की मूलभूत शब्दावली (पृ. 135)	निःशुल्क
21. कंप्यूटर विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 115)	निःशुल्क
22. भूगोल की मूलभूत शब्दावली (पृ. 156)	निःशुल्क
23. भूविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 141)	निःशुल्क

शब्द-संग्रह

1. कोशिका-जैविकी शब्द-संग्रह (पृ. 197)	62.00
2. गणित शब्द-संग्रह (पृ. 357)	143.00
3. भौतिकी शब्द-संग्रह (पृ. 536)	119.00
4. गृहविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ. 144)	60.00
5. रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह (पृ. 167)	-

6. भूगोल शब्द-संग्रह (पृ. 369)	200.00
7. खनन एवं भूविज्ञान शब्द-संग्रह	-
8. भूविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ. 328)	88.00
9. संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह (पृ. 48)	15.00
10. पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली (पृ. 184)	12.25

आयोग द्वारा प्रकाशित पाठमालाएँ/मोनोग्राफ

क्र.सं.		मूल्य
1.	ऐतिहासिक नगर	195.00
2.	प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00
3.	समुद्री यात्राएँ	79.00
4.	विश्व दर्शन	53.00
5.	अपशिष्ट प्रबंधन	17.00
6.	कोयला : एक परिचय	294.00
7.	वाहित मल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
8.	पर्यावरणी प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन	23.50
9.	रत्न-विज्ञान — एक परिचय	115.00
10.	2-दूरीक एवं 2-मानकित समष्टियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
11.	पराज्यामितीय फलन	90.00
12.	ऊर्जाः संसाधन एवं संरक्षण	105.00

MGIP(PLU)MRND—3723HRD—14.11.2002.

PED—831
600—2002 (DSK-II)

विक्रय मूल्य : रु० 155.00 विदेश में £ 2.27 या $ 3.21

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली–110002 द्वारा मुद्रित।